प्रस्तावना

जिन धर्म एक ऐसा अपूर्व रसायन सदृश अलभ्य दत्कंपक वस्तु है कि जिसका मिलना उन्हीं भाग्यशीलोंके आधीन है कि जो स्वाभाविक भावुकताके अधिकारी है। जिस धर्मकी आंशिक उपलब्धिकाभी दर्शन अध्यात्मक पवित्रतामें ही है। उसके अभावमें विद्या तथा तपस्या जिस उद्देश्यसे सपरिश्रमभी जो की जाती है वे सब उस उद्देश्यकी भावनामें विफल मनोरथ ही हैं। यद्यपि अन्य सभी धर्मवादी अपने कर्तव्यका मुख्य सीमास्थल उसी रूपसे वचनात्मक पद्धति द्वारा-भलेंही वर्णन करें परन्तु विपक्षपरीक्षकतामें परस्पर विपक्षता होनेसे स्वर्ण पीत-लके समान विभिन्नता अवश्यही होगी। जिस तरह ऊपरके दृष्टान्तमें पीत सादृश्य है फिरभी उसमें जो वास्तविक ग्राह्यता है वह सुवर्णीय है। इसी दृष्टिसे शब्द समानतामें धर्म धर्म यह शब्द सर्वत्र साम्प्रिदायिकताओंमें लागू है तथापि उसकी सुवर्णता एक ऐसी सार्व साम्प्रिदायिकतामें है जो उस धर्मकी सुवर्णीय व्याख्याका खास एक केन्द्र स्थल है। उस स्थलकी वास्तविक प्राप्ति जिस व्यक्ति विशेषको हुई है वही महात्मा भावुकके फलका अधिकारी हुआ है। और उसीका इस निरुक्तिद्वारा जैन यह निर्युक्तिक (वास्तविक) नाम है। अथवा जिसने क्रोधादि समस्त वैभाविक (विकृत) धर्मोंको जीत लिया है वह **जिन** उसका जो धर्म वह **जिनधर्म** और उसका सच्चा अनुयायी **जैन**।

यह जिनधर्म आत्माकी स्वाभाविक परिणति होनेसे अनादिकालीन आत्माके समान अनादिकालीन है तथा उसके धारक जैन भी संसारमें अनादि कालसे है। क्योंकि **न धर्मो धार्मिकैर्विना,** यह अटल सामतभद्रीय वाक्यही धर्म और धर्मीकी संयुक्तताका निर्देशक है।

मोहक सांसारिक प्रवृत्तिके कारण जिस जिस समय इस धर्मका ह्रास होता है उस उस समय सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा जिनद्वारा इस धर्ममें नवीन जागृति उप-स्थिति होती है अतः इस जागृतिकी अपेक्षाही तीर्थंकर मूलस्थापक माने जाते हैं इस हुंडावसर्पिणी कालमें इस धर्मके प्रथम प्रवर्तक ऋषभ जिन इस भरत क्षेत्रमें हुए। इसी तरह तेवीस तीर्थंकर और हुए उनमें अन्तिम तीर्थंकर महा-वीर जिन हुए। उन्हींके धर्मानुयायी आजकलके जैन इस आर्यावर्त भरतक्षेत्रमें जो कुछ थोडी संख्यामें कुछ देखे जाते हैं वह सिर्फ कालदोषजन्य लीला है।

सर्वसाधारणकी दृष्टिमें ये जैन दो संख्यामें विभक्त हैं एक दिगम्बर दुसरे श्वेताम्बर, इनमेंसे ऐतिहासिक दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो मूलकता और असलिय एक दिगम्बर सम्प्रदायमें है। इस सम्प्रदायमें जो मूल सघता है वह इसी उद्देश्यकी सूचक है। भद्रबाहू श्रुतकेवली तथा उनके अनन्य भक्त मौर्वीय प्रथम चद्रगुप्त सम्राटके अन्तकालके कुछ समय वाद शैथिल्य साधुवर्गके द्वारा श्वेताम्बर सम्प्रदायिकी उत्पत्ति हुई। उसमें उस धर्मके मुआफिक साधुचर्या सरल होनेसे वैसे (श्वेत पटधारी) साधु आज कल भी देखे जाते हैं। उनमें मूल दिगम्बर सम्प्रदायसे अलग होनेके वाद अपनी स्मृति तथा धारणाके मुआफिक शास्त्र तथा प्रवृत्तियोंकी रचना वृत्ति जो कुछ देखनेमें आती है उसमें दिगम्बर संप्रदायिसे वहुत फर्क पाया जाता है। परंतु उनके मुआफिक जो आवश्यकादि कर्तव्य तथा और जो क्रिया हैं उनकी प्रवृति जैसी पाई जाती है वैसी सर्व साधारणकी अपेक्षा दिगम्बर सम्प्रदायमें देखनेमें नहीं आती उसका कारण पदस्थकी प्रधानता है। इस कलिकालके दोप दिगम्बरीय साधु सख्या वहुतही कम इनी गिनी नजर आती है तथा प्रतिमाधारियोंकी सख्या भी वहुत कम है परतु जो कुछ सख्या है उस सवमें अपने पदस्थके मुआफिक आवश्यक क्रियाओंका पालन पूर्ण रीतिसे होता है। तथा दूसरे पाक्षिक श्रावक भी अपनी शक्तिके मुआफिक करते हैं। परंतु सामायिकादि षड् आवश्यकका प्रधान रीतिसे आचरण जैसा दि. मुनिवर्ग तथा नैष्ठिक श्रावक वर्गमें है वैसा पाक्षिकमें तथा नैष्ठिकके प्रथम द्वितीय पदमें नहीं है। परंतु इसका यह मतलव नहीं है कि वहा यह आचरणही नहीं। आचरण अवश्य है परंतु प्रधान गौणका भेद अवश्य है। नैष्ठिक श्रावकके तृतीय दर्जेसे लेकर मुनिपर्यंत पदस्थ मुआफिक षडावश्यककी प्रधानता है और उससे नीचे दर्जेमें गौणता है। इसी तरह देवपूजा, गुरु—उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान, ये छह कर्म गृहस्थके साधारण रीतिसे वर्णन किये हैं परतु इनमें भी गृहस्थके लिये देवपूजा, गुरु उपासना तथा दान इनपर कुछ जादा आवश्यकता उनके पदके मुआफिक है औरोंमें तथा इनमें पदके मुआफिक सर्वकी प्रधानतासे योजना है। इसी तरह सामायिकादिमें भी नीचेसे लेकर अपने पदके मुआफिक उत्कर्षता है। न कि नीचे दर्जेमें तो अभाव हो और ऊपर विधानता हो ऐसा नहीं।

---

१ देवपूजागुरूपास्तिः स्वाध्याय संयम तपः दान चेद् गृहस्थाना षट् कर्माणि दिने दिने ।

किंतु अपने अपने दर्जेके मुआफिक शास्त्र सम्मत सब दर्जोंमें वैसा विधान है। और वे अवश्य कर्तव्य हैं इस लिये उनका नाम आवश्यक है।

मूलाचार प्रणीत आवश्यकी निरुक्ति।

ण वसो वसो अवसस्स कम्ममावासयन्ति बोद्धव्वा।
जुत्तित्ति उवायत्ति य णिरवयवा होदि णिज्जुत्ती॥ ५१५॥

मूलाचार

जो क्रोधादि कषाय तथा रागद्वेषादि वैभाविक परिणतिके वशीभूत (आधीन) नहीं है वह अवश है उसका जो कर्तव्य (आध्यात्मप्रवृत्तिरूप आचरण) वह आवश्यक है। [1]॥

इस गाथाके पूर्वार्द्धमें आवश्यक शब्दका निरुक्ति शब्दार्थ कहकर निर्युक्ति शब्दका भी 'निरुक्ति' द्वारा अर्थ इस प्रकार किया है॥ ५१५॥

युक्ति उपायका नाम है और जो निरवयव अर्थात् पूर्ण युक्ति (उपाय) सो निर्युक्ति है अर्थात् आवश्यकके पूर्ण उपाय सो आवश्य निर्युक्ति हैं।

आवश्यकके पूर्ण उपाय छह है।

सामाइय चउवीसत्थव वंदणयं पडिक्कमणं।
पच्चक्खाणं च तहा काओ सग्गो हवदि छट्ठो॥ ५१६॥

मूलाचार।

सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ इस प्रकार ये छह आवश्यक नामसे प्रसिद्ध हैं।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव, इन छह निक्षेपोंद्वारा मूलाचार तथा प. आशाधरजी कृत अनागार धर्मामृत ग्रथमें सामायिकादिके कथनका विधान है सामायिक क्रियामें जैसे—

शुभेऽशुभे वा केनापि प्रयुक्ते नास्मि मोहतः।
स्वमवाग्लक्षणं पश्यन्न रतिं यामि नाऽरतिम्॥ २१॥

अध्याय ८ अनागार धर्मामृत॥

---

१ जरूरी कर्त्तव्य भी आवश्यक शब्दका अर्थ है। जैसा कि अनागार धर्मामृतमें कहा है—

यद्व्याध्यादिवशेनापि क्रियतेऽक्षावशेन तत्।
आवश्यकमवश्यस्य कर्माहोरात्रिकं मुनेः॥ १६॥

अज्ञानसे उच्चारित—शुभ तथा अशुभ नाममें रागद्वेषका त्याग वा साम्यभावका नाम सामायिक इत्यादि। इसी तरह अन्य आवश्यकोंके साथ भी नामादि निक्षेपका अनागार धर्मामृतमें विधान है ॥

सामायिकका सामान्य लक्षण मूलाचारमें इस प्रकार है—

सम्मत्तणाणसंजमतवेहिं जं तं पसत्थ समगमणं।
समयंतु तं तु भणिदं तमेव सामाइयं जाणे ॥ ५१८ ॥

सम्यक्त्व ज्ञान सयम और तप इनके साथ जीवकी भले प्रकार प्राप्ति अर्थात् जीवकी इन चारों स्वरूप अवस्था है उसीका नाम समय है और समयका ही नाम सामायिक है ॥ अथवा सामायिक शब्दके यौगिक और भी बहुतसे अर्थ है। जैसे कि—समय नाम आत्माका है उसके धर्मका नाम सामायिक है। अथवा शुद्धात्म—परिणति तथा तदर्थ क्रिया, अथवा भले प्रकार गमन तथा उस निमित्त क्रियाका नाम भी सामायिक है ॥ तथा जीवन मरण लाभ अलाभ इष्ट अनिष्ट पदार्थ सयोग तथा इष्ट अनिष्ट कर्म। सुख-दुःख शत्रु-मित्र वा भगिनी-भार्यादिमें रागद्वेष निवृत्ति पूर्वक वास्तविक साम्यताका नाम भी सामायिक है अथवा समय नाम द्वादशाग रूप शास्त्रका भी है उनकी प्राप्ति तथा उनकी श्रद्धा तथा भावनारूप परिणतिका नाम भी सामायिक है। तथा साम्यभावके निमित्त जो पाठ है उसका नाम भी सामायिक है—इस प्रकार सामायिकके ग्रथकारोंने अनेक अर्थ किये है। वे सब ही आत्मशुद्धिके बोधक है। तथा सामायिकके कौन कैसे व्यक्ति अधिकारी है तथा किन २ कारणोंसे सामायिक स्वरूपमें परिस्थिति रह सकती है तथा किन कारणोंसे सामायिकमें प्रवृत्ती होती है इत्यादि योग्य २ स्थलोंमें जहा जैसा चाहिये वहा वैसा वर्णन मिलता है। सामायिकका वर्णन हमारे यहा चार स्थलोंमें मिलता है। वे स्थल चार ये है।—

श्रावकके १२ व्रतोंमें पहिला शिक्षा व्रत १
श्रावककी ११ प्रतिमाओंमेंसे तीसरी प्रतिमा २
पाच प्रकारके चारित्रोंमेसे पहला चारित्र ३
षडावश्यकोंमें प्रथम आवश्यक ४

---

१ जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये।
बन्धावरौ सुखे दुःखे साम्यमेवाभ्युपैम्यहम् ॥ २७ ॥
अनागार धर्मामृत, अध्याय ८

(१) शिक्षाव्रतमें जो सामायिक है उसका स्वामी समन्तभद्रने ६ छह स्थलोंमें विभक्त कर समाप्त किया है। जैसे कि स्वरूप १ विधि २ सार्थकता ३ परीषह उपसर्गके सहनकी शक्ति ४ तथा विचार करने योग्य पदार्थ ५ और पञ्च अतीचारका त्याग ६ इन ८ श्लोकोंमें सामायिक सम्बंधि सर्व वर्णन है उसी प्रकार अन्य ग्रंथकारोंने भी संक्षेप तथा विस्तृत रूपमें वर्णन किया है। पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें सामायिकका लक्षण करते हुए सामायिकको तत्त्वज्ञानमें कारण बतलाया है जैसा कि १४८ के छन्दमें है। तथा सामायिककी सार्थकतामें भी रत्नकरंड श्रावकाचारके समान श्रावकको औपचारिक महाव्रती वर्णन किया है जैसा कि १५० वीं आर्यामें है। इसी तरह सागार धर्मामृत वगैर में खूब स्पष्टतासे वर्णन है।

(२) प्रतिमास्थलमें तीसरे सामायिक प्रतिमा धारीका वर्णन रत्नकरंड श्रावकाचारमें इस प्रकार है—

चतुरावर्तत्रितयश्चतु प्रणामस्थितो यथा जातः।
सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसंध्यमभिवन्दी ॥१३९॥

चारों दिशाओंमें तीन तीन आवर्त और चार प्रणाम सहित तथा बाह्य और आभ्यन्तर उपाधि रहित दो आसन (पद्मासन तथा खड्गासन) सहित मन वचन कायरूप योगत्रय शुद्ध तीनों सन्ध्याओंमें वन्दना करनेवाला सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक है ॥ १३९ ॥

इस दर्जेमें नीचेके दर्जेसे सामायिककी उत्कृष्टता ऐसी है कि यहा यह अवश्य कर्तव्य है वज्रपात सरीखी विपत्ति आनेपर भी सामायिक सम्बंधि क्रियासे विमुखता नहीं होती तथा इस पदके मुआफिक पूर्ण दृढता रहती है। इससे ऊपरके दर्जेमें और भी उत्तरोत्तर दृढता तथा अकंपता है।

(३) पांच प्रकारके चारित्रमें जो सामायिकका विधान है वह वहा पर मुख्यतासे संवरका कारण है क्योंकि वीतरागताका विशेष कारण होनेसे परमशुद्धताका नियामक है तथा चारित्रान्तरगत जो उसका विधान है व गृहि [illegible]नकी प्रधानतासे है।

(४) आवश्यकों में जो सामायिकका विधान है उसका प्रयोजन यह है कि मुनि तथा श्रावकको अपने २ पदमें पूर्णरूपसे स्थित करनेमें कारण है अत: इसका

---

१ रत्नकरंड श्लोक नं. ९७ से १०५ तक.

अवश्य कर्तव्यरूपसे धारण करना जरूरी है ऐसा ही सबध दूसरे वदन आदि आवश्यके साथ है।

यहा सामायिककी दृढताके लिये अनेक प्रकारके भावुक सामायिक पाठ पढ़े जाते हैं जिससे कि सामायिककी तरफ विशेप प्रवृत्ति होती है तथा दृढ़ता होती है। जैसे कि प्रस्तुत यह सामायिक पाठ है। तथा श्री अमितिगति आचार्यकृत संस्कृत पाठ है तथा और भी अनेक भाषाओंमें पाठ है। तथा प्राचीनग्रथोंमें भी ऐसे पाठ मिलते हैं जैसे कि मूलाचारमें—

> जो समो सव्वभूदेसु तसेसु थावरेसु य।
> तस्स रागो य दोसो य वियर्डि ण जणेंति दु ॥ ५२६ ॥

मूलाचार

त्रस और स्थावर ऐसे सर्व प्राणियोंमें जो वाधारहित सम परिणाम करता है उसके राग और द्वेप विकारको नहीं उत्पन्न करते अर्थात् उसीके सामायिक स्थिर रहता है।

इसी रीतिसे अनागार धर्मामृतमेंभी ऐसे पाठ हैं जैसेकि—

> सर्वसत्वेषु समता सर्वेष्वाचरणेषु यत्।
> परमाचरणं प्रोक्तमतस्तामेव भावये ॥ ३४ ॥

अध्याय ८

सर्व प्राणियोंमें जो समता है वह सर्व आचरणोंमें उत्कृष्ट आचरण कहागया है अतःउसीकी भावना करू ॥ ३४ ॥ इस श्लोकमें सामायिक सम्वधि प्राधान्यता तथा दृढ़ताके निमित्त विशेप वर्णन है ॥

> मैत्री मे सर्वभूतेषु वैरं मम न केनचित्।
> सर्वसावद्यविरतोऽस्मीति सामायिकं श्रयेत् ॥ ३५ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंसे मेरी मित्रता है वैर किसीके साथभी नहीं है इसी हेतुसे मैं सर्व पापोंसे रहित हू, इसीलिये आपभी सामायिकका आश्रय लो ॥ ३५ ॥

भावार्थ—सर्व पापोंकी निवृतिमें कारण सामायिक है इसलिये उसका धारण करना अवश्य कर्तव्य है।

गृहस्थभी यदि सामायिकको पूर्ण रीतिसे धारण करैं तो वह महाव्रती मुनिके समान है यह सर्व आचारग्रथोंमें कहा गया है। अर्थात् जो महाव्रत सम्वधि फल मुनियोंको प्राप्त होता है। वैसा तथा वह फल परपरायसे गृहस्थको भी

मिलता है। विधिपूर्वक सामायिकके धारक गृहस्थका विशेष माहात्म्य मूलाचारमें इसप्रकार वर्णन है।

सामाइए कदे सावए ण विद्धो मओ अरण्णम्मि।
सो य मओ उद्धादो ण य सो सामाइयं फडिओ॥ ५३२॥

मूलाचार।

वनमें श्रावकके सामायिक करनेपर शिकारियों (हिंसकों) द्वारा पशुवध नहीं होता अर्थात् पशुवर्ग त्रासको प्राप्त नहीं होते। और वह पशुवर्ग भी उद्धत (क्रूर) नहीं रहते कि जिससे सामायिकमें विघ्न हो अर्थात् श्रावकके सामायिक करते समय सभी पशु पक्षी क्रूरभाव छोड़कर शान्त हो जाते हैं॥ यह इस सामायिकका ऐहिक चमत्कार है॥

सामायिकका अन्य पच आवश्यकोंके साथ भेदाभेदीकरण जिस प्रकार पात्र विशेषकी अपेक्षासे सामायिक और छेदोपस्थापना रूप चारित्रका तीर्थंकरोंने जुदा २ उपदेश दिया है उसी प्रकार आवश्यक क्रम भी भेद तथा अभेद विवक्षासे भेदाभेदात्मक है। और जैसे अहिंसाव्रतके अलावा अन्य चार व्रत भी अहिंसा स्वरूप हैं तथा चारित्र और आवश्यकभी भेद विवक्षासे ५ और ६ भेद रूप क्रमसे हैं और अभेद विविक्षासे एक सामायिक रूप हैं। क्योंकि ग्रथकारोंकी आर्थिक कथन शैलीसे यही निर्णय होता है कि अन्य सव सामायिककेही परिकर हैं और उन सवका विधान सामायिकमें अभिरुचि, दृढता तथा स्थिरताके लिये हैं। इसी हेतुसे अन्य आवश्यक भी सामान्य रीतिसे सामायिक नामसे कहे जा सकते हैं तथा कहे जाते हैं। जैसे कि पडित महाचद्रजीकृत एक भाषा सामायिक पाठ मूलचद्र कशनदासजी कापड़िआके प्रेसमें सूरतसे प्रकाशित हुआ मिलता है और उसका गुजराती अर्थ प. नदनलालजी चावली (आगरा) द्वारा किया हुआ है। उसमें पाठ तो प्रतिक्रमण वगैर सभी है परतु नाम सामायिक पाठ

---

१ वावीसं तित्थयरा सामायियं संजमं उवदिसंति।
छेदुवठावणियं पुण भयवं उसहो य वीरो य॥ ५३३॥

मूलाचार।

आदि और अतिम जिनने छेदापस्थापनाका और वाकीके तीर्थंकरोंने सामायिकका उपदेश दिया।

है। फिर भी पहले प्रतिक्रमण कर्मका पाठ है सामायिक कर्म तो तीसरे नम्बरपर है। इससे प्रतीत होता है कि—अन्य आवश्यक सामायिकके साधन होनेसे सामायिक नामसे भी कहे जाते हैं फिर उनमें जैसा क्रम हो वैसाही ठीक कहा जा सकता है। परतु जहा भेद दृष्टिसे व्यवस्था है वहा वह ही क्रम है जो कि मूलाचारकी गाथासे लिख चुके हैं तथा यही क्रम प. आशाधरजी प्रणीत अनागार धर्मामृतमें भी पाया जाता है। जैसे कि—

सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वंदना प्रतिक्रमणम्।
प्रत्याख्यानं कायोत्सर्गश्चावश्यकस्य षड्भेदाः ॥ १० ॥

अध्याय ८

छह आवश्यकोंका संक्षेपतासे स्पष्टीकरण।

(१) सामायिक—समता तथा समय सम्बन्धिकृत्य, (पूर्व वर्णित अर्थ)

(२) चतुर्विंशतिस्तव—जिन्होंने पूर्ण समयभाव (आत्मधर्म या समता) प्राप्त कर ली है अर्थात् जिन्होंका आत्मभावके ऊपर पूर्ण अधिकार है ऐसे साम्यभावके स्वामी वृषभादि वर्तमान चौवीस तीर्थंकर तथा भूत भविष्यत् कालकी अपेक्षासे अनतानत तीर्थंकरोंकी स्तुति भक्तिपूर्वक जिसमें वर्णित हो वह चतुर्विंशतिस्तव है॥ उसका विशेष स्वरूप प. अशाधरजीकृत अनागार धर्मामृतमें इस प्रकार है—

कीर्तनमर्हत्केवलिजिनलोकोद्योतधर्मतीर्थकृताम्।
भक्त्या वृषभादीनां यत् स चतुर्विंशतिस्तव. षोढा ॥३७॥

अध्याय ८।

जो जन्मजरामरणस्वरूप ससारशत्रुको नाशकर त्रिलोकवद्य पूर्ण आर्हन्त्य पदको प्राप्त हुए तथा समस्त द्रव्य पर्यायोंको एक कालीन प्रत्यक्ष करनेवाले केवल-ज्ञानको जिन्होंने प्राप्त किया और ससारके कारण रागद्वेषपरिणतिरूप अनतानुबधी क्रोधादि १६ सोलह कषाय तथा नव हास्यादि नोकषायोंको जीतकर जो पूर्ण जिन भावको प्राप्त हुए, और नाम आदि ९ नवलोकके भावतासे द्योतक

---

१ णामं ठवणं दव्वं खेत्तं चिण्हं कसाय लोओ य।
भवलोग भावलोगं पज्जयलोगो य णादव्वो ॥ ५४१ ॥

मूलाचार।

अर्थात् जाननेवाले तथा धर्मतीर्थके प्रवर्तक वृषभ जिन आदि २४ तीर्थकरोंका तथा अनतानंत चोवीसियोंका भक्तिमार्गसे कथन (स्तवन) चतुर्विंशति स्तव है और वह नाम स्थापनादि ६ छह निक्षेपोंके भेदसे, छह प्रकार है। इन छहोंमेंसे नामादि पाच प्रकारका चतुर्विंशति स्तव व्यवहार नयसे है और परमार्थसे केवल भावस्तव है। जैसा कि अनागार धर्मामृतमें कहा है—

स्युर्नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालाश्रयाः स्तवाः।
व्यवहारेण पञ्चार्थादेको भावस्तवोऽर्हताम् ॥ ३८ ॥

अध्याय ८।

नामादि निक्षेपों द्वारा कथित चतुर्विंशतिस्तवमें नामस्तव यथा—

अष्टोत्तरसहस्रस्य नाम्नामन्वर्थमर्हताम्।
वीरान्तानां निरुक्तं यत्सोऽत्र नामस्तवो मतः ॥ ३९ ॥

अनागार धर्मामृत अ ८

आदिनाथस्वामीसे लेकर महावीर पर्यंत चौवीस तीर्थंकरोंके एक हजार आठ नामोंका अन्वर्थक कथन नामस्तव है। जैसे—श्रीमान् स्वयंभू वृषभ इत्यादि इसी प्रकार स्थापनास्तवादिका लक्षण भी अनागारधर्मामृतमें है। उनमें चिन्ह गुण रग रेखादि लक्षणो द्वारा सर्व प्रकारकी स्तुति है। इससे अभिमानका त्याग होकर विनय गुण प्रगट होता है तथा परणामोंसे विषमता अलग होती है और आत्म गुण मुख्य समता प्रगट होती है ॥

शुभअशुभ नामका नाम नामलोक १ कृत्रिम तथा अकृत्रिम जो कुछ सो स्थापनालोक २ छह द्रव्योंके समूहका नाम द्रव्यलोक ३ और प्रदेशसहित ऊर्द्धलोक मध्य अध. लोकका नाम क्षेत्रलोक ४ द्रव्यगुणपर्यायोंका आकार सो चिन्हलोक ५ उदयरूप क्रोधादि कषाय कषायलोक ६ नरकादिचार योनियोंमे अपनी पर्यायको प्राप्त जीव-भवलोक ७ तीव्र रागद्वेषादि भावलोक ८ पर्यायलोक—द्रव्यगुण १ क्षेत्र २ भवानुभाव (आयु) ३ भाव (परिणाम) ४ के भेदसे ४ चार प्रकार है। ९ ॥ इसमे जीवादि द्रव्यके ज्ञानादि गुण-द्रव्यगुण पर्याय १ रत्नप्रभा जंबूद्वीप ऋजुविमान आदि—क्षेत्र पर्याय २ आयु सम्बधि जघन्यमध्य उत्कृष्ट कल्पना—भवानुभव ३ कर्मके ग्रहण तथा त्याग करनेमे समर्थ असंख्येयलोक प्रमाण शुभाशुभ जीवके भाव—भावपर्याय ४

(३) वदन—पूज्य अरहतादिमें किसी एक परमेष्ठीके निमित्त आत्म परिणामकी विशुद्धतासे नमस्कारादिस्वरूप जो विनय क्रिया है वह वंदन है इसके भी नामादिके भेदसे छह भेद हैं। परिणाम विशुद्धि—कृतिकर्म, चितिकर्म, पूजाकर्म, विनयकर्म, स्वरूप क्रियाओंसे होती है।

विनयके—लोकानुवृत्ति १ अर्थनिमित्त २ कामतंत्र ३ तथा भय ४ मोक्ष ५ इस प्रकार पच भेद हैं जिनका कि मूलाचार अनागार धर्मामृतमे अच्छी तरह विवेचन है। इन पाचोंमें मोक्षविनय प्रशस्त है और वदन अधिकारमें उसीको लिया है। और वह अनादृत आदि ३२ दोपोरहित पालन किया जाता है तव निर्दोष शुद्ध अखडिताको प्राप्त करता है।

इन वदन आवश्यकके—लक्षण, भेद, वद्य, अवद्य, अधिकारी, अनधिकारी, आदिका खुलासा, धर्मामृत, मूलाचारमें सविस्तृत हैं। यह आवश्यक भी मदोद्धत्यका नाशक होकर नम्रता पैदा करता है जो कि—साम्यभावकी सहकारिणी है।

(४) प्रतिक्रमण—जिसके द्वारा अनात्म भावसे आत्मभावमे पुन. प्राप्तिहो, अथवा प्रमोदजन्यदोप जिसके द्वारा निवृत्त हों या जो अतीचारका सशोधक हो वह प्रतिक्रमण है। सस्कृतमे इस शव्दकी विग्रह निरुक्ति—प्रतिक्रम्यते येन, ऐसी होती है। उसका अभिप्राय यह होता है कि—छूटे हुए स्थानमें जिसके द्वारा वापिसी (पुन. प्राप्ति) हो अर्थात् पूर्वगृहीत स्वाभाविक स्थानका किसी कारण त्याग होनेपर भी फिर उसी स्थानकी प्राप्ति जिसके द्वारा हो वह प्रतिक्रमण है। उसीका अर्थ प्रमाद प्राप्त दोषोंका जिसके द्वारा नाश हो। इत्यादि प्रतिक्रमणके अर्थ हो

---

१ कर्म नाशक क्रिया २पुण्य संचय ३ पूजानिमित्त माला चंदन वगैरः पवित्र वस्तु समर्पण ४ शुश्रूषा आदि.

५ वंदना नतिनुत्याशीर्जयावादादिलक्षणा।
भावशुद्धया यस्य तस्य पूज्यस्य विनयक्रिया ॥ ४६ ॥

अनागार धर्मामृत अ. ८

६-प्रमादप्राप्तदोषेभ्यः प्रत्यावृत्य गुणावृतिः।
स्यात्प्रतिक्रमणा यद्वा कृतदोषविशोधना ॥

प्रसादजन्य दोषोंसे हटाकर गुणोंमें वापिस करना, या किये हुए अपराधोंकी शुद्धि करना—प्रतिक्रमण है। इसे गुणावृति तथा विशोधना भी कहते हैं।

जाते हैं। और वह प्रतिक्रमण दडक (पाठ विशेष) आदिके आठ विकल्पोंके द्वारा किया जाता है। और इसकी प्रवृति सामायिकादिके समान नामादिसे ६ छह प्रकार है इस लिये यह भी छह भेद स्वरूप है। और वह दिवस रात्रि आदि सात निमित्तरूप है। इसका लक्षण अनागार धर्मामृतमें इस प्रकार है—

अहर्निशापक्षचतुर्मासाब्देर्योत्तमार्थभूः।
प्रतिक्रमस्त्रिधाध्वंसोनामाद्यालम्बनागस ॥ ५७॥

अध्याय ८।

दिन, रात्रि, पक्ष, चतुर्मास, वर्ष, ईर्या, और यावज्जीव, इन सातके आश्रय नाम आदि निमित्तजन्य अपराधोंका मन वचन काय द्वारा नाश प्रतिक्रमण है। ॥ ५७ ॥

नामादि द्वारा उत्पन्न हुए दोपोंकी प्रतिक्रिया किस प्रकार होती है इसका खुलासा ५९–६० के श्लोकोंसे इस ग्रथद्वारा हो जाता है मूलाचारमें भी इसको वर्णन इसी प्रकार है।

और यहा करण आधिकरण रूप प्रतिक्रमणके समान कर्ता और कर्म कारकका भी वर्णन लक्षण रूपसे किया गया है। जैसे—

स्याप्रतिक्रमकः साधुः प्रतिक्रम्यं तु दुष्कृतम्।
येन यत्र च तच्छेदस्तत्प्रतिक्रमणं मतम् ॥ ६१ ॥

---

१ 'पडिक्कमामि भंते' इत्यादि प्राकृत पाठ जो कि इस पुस्तककी आदिमें है। तथा संस्कृत पाठ—ईर्यापथे प्रचलिताद्य मया प्रमादादित्यादि अनेक पाठ अनेक भाषामें कहे गये हैं।

२ प्रतिक्रमणं प्रतिसरणं परिहरणं धारणा निवृत्तिश्च।
निन्दा गर्हा शुद्धिश्चामृतकुम्भोन्यथापि विषकुंभाः ॥६३॥

अनागार धर्मामृत

दडक पाठ विशेषका पढना सुनना—प्रतिक्रमण, गुणोंमे प्रवृति—प्रतिसरण, दोषोंसे निवृत्ति—प्रतिहरण, चित्तका स्थिर करना—धारणा, विरुद्ध मनोवृत्तिका रोकना, किये हुए दोपोंकी (मैने बुरा किया) ऐसी भावना भाना—निंदा, और उन्हीं दोषोंको गुरुके समीप निवेदन करना—गर्हा, और प्रायश्चित्तादि द्वारा आत्माको शुद्ध करना—शुद्धि, ये सर्व अमृतके समान हैं क्यों कि आत्म शुद्धिके कारण है अन्य विष घट तुल्य हैं।

प्रतिक्रमण करनेवाला साधु प्रतिक्रमक "कर्त्ता, और प्रमादजन्य अतीचार रूप पाप" प्रतिक्रम्य, कर्म है जिस क्रियासे तथा जिस क्रियामें दोषोंका परित्याग हो वह प्रतिक्रमण है। ऐसाही विचार अन्य आवश्यकोंमें रूपान्तरसे है। इसके द्वारा दोष निवृत्ति होनेसे आत्मा आत्मस्वरूपका लाभ कर परम सामायिकी होता है इस कारण अभेद विवक्षासे इसको सामायिक भी कहते हैं। इसी हेतु जो प्रतिक्रमण पाठ है वह सामायिक पाठ भी कहा जाता है। यही नियम अन्य आवश्यकोंके साथ भी हैं। और इसी नियमका निर्वाह इस प्रस्तुत सामायिक पाठमें है। क्योंकि इसमें स्तवन वंदन प्रतिक्रमणादि सभी पाठ होने पर भी इस पुस्तकका नाम पंडित जयचंद्रजी सरीखे विद्वानोंने सामायिकपाठही लिखा है। और वह युक्तिमार्गसे समुचितही है॥

(५) प्रत्याख्यान—त्याग वृत्तिका नाम प्रत्याख्यान है। उसमें किस पदार्थका त्याग कौन करता है इसका वर्णन अनगार धर्मामृतमें इसप्रकार है—

सावद्येतरसच्चित्ताचित्तमिश्रोपधींस्त्यजेत्।
चतुर्धाहारमप्यादिमध्यान्ते स्वाज्ञयोत्सुकः॥ ६८॥

अध्याय ८।

प्रत्याख्यानके ग्रहणसमय तथा मध्य और अन्तसमय. जिन तथा गुरु आज्ञाद्वारा उत्साही (साधु) हिंसादि अपराधसे सदोष या निर्दोष, सचित्त अचित्त तथा मिश्र सर्व प्रकारके परिग्रह और भोजनका त्याग करता है॥

इसमे त्यागका नाम प्रत्याख्यान, परिग्रहादि प्रत्याख्येय, और त्याग करनेवाला प्रत्याख्याता, इसप्रकार प्रतिक्रमणके समान कारक चतुष्टयका वर्णन है।

नामादि छह निक्षेपोंकी अपेक्षा प्रत्याख्यानका लक्षण—

निरोद्धुमागो यन्मार्गच्छिदो निर्मोक्षुरुज्झति।
नामादीन् षडपित्रेधा तत्प्रत्याख्यानमामनेत्॥ ६५॥

मोक्षका इच्छुक अपराधके रोकनेके लिये रत्नत्रयके विरोधी नामादि छहका जब त्याग करता है तब वह त्याग प्रत्याख्यान कहा जाता है॥ ६५॥

अनागार धर्मामृत, अध्याय ५.

प्रत्याख्यानमे अन्य उपाधियोंके त्यागके साथ उपवासकी विशेषतासे प्रधानता है। और वह सार्थक–अनागत, अतिक्रमण आदि दशभेदों सहित विनयादि चतुष्ककर शुद्ध मोक्षार्थी साधुद्वारा यथाशक्ति पालन किया जाता है।

---

1 प्रतिक्रमणका

अनागत आदि दश भेद तथा विनयादि चतुष्कका कथन मूलाचार तथा अनागार धर्मामृतमें विस्तारसे वर्णित है। मौका लगनेपर उनका वर्णन फिर कभी किया जायगा। भूमिका बढ जानेके हेतु यहा नहीं किया है।

इसके द्वारा सर्व प्रकारकी लालसाका त्याग होनेसे साम्यभावरूप आत्मवृत्तिमें दृढता होती है।

यह अन्य आवश्यकोंके समान मुनियोंद्वारा प्रधानतासे अवश्य कर्तव्यतारूपसे पालन किया जाता है और श्रावकोंके भी अपने पदके मुआफिक अवश्य कर्तव्य है। इसके पाठमें त्याग वृत्तिके उद्बोधक उन भावोंका कथन है कि जिनके पढने सुननेसे त्याग भावकी जागृति तथा त्याग भावमें स्थिरता होती है। अन्य आवश्यक पाठोंमे भी ऐसी ही शैली है जिनका कि कुछ कुछ उल्लेख हमने भूमिकामें कहीं २ यथा स्थान किया है। विशेष ज्ञानके लिये दि० जैन संप्रदायमें आवश्यक विषयक अनेक ग्रन्थ है जिनका कि वास्तविक मुकाविला यथार्थरीतिसे कहीं भी नहीं है।

(६) कायोत्सर्ग—शरीर सम्बन्धि त्यागका नाम कायोत्सर्ग है इसका असली अर्थ कायसम्बधि ममत्वपरिणामका त्याग है जैसा कि आशाधरजीने अनगार धर्मामृतमें प्रमाणरूपसे कहा है—

ममत्वमेव कायस्थं तात्स्थ्यात् कायोऽभिधीयते।
तस्योत्सर्गस्तनूत्सर्गो जिनविम्बाकृतेर्यतेः॥

शरीरस्थित ममत्वही शरीरस्वरूप होनेसे काय कहा जाता है उसके त्यागका नाम कायोत्सर्ग है और वह जिनप्रतिमाकी आकृतिके समान साधुके होता है।

कायोत्सर्गका धारक सर्व प्रकारके परीषह तथा उपसर्गको सहता है जैसा कि कहा भी है—

अनगार धर्मा॰ अध्याय ८।

व्युत्सृज्यदोषान्¹ निश्शेषान् सद्ध्यानी स्यात्तनूत्सृतौ।
सहेताप्युपसर्गोर्मीन् कर्मैवंभिद्यतेतराम्॥ ७८॥

कायोत्सर्गमें श्रेष्ठ ध्यानी सम्पूर्ण बाह्य अभ्यन्तर उपाधिजन्य दोषोंको छोड़कर सर्व प्रकारके दैविक आदि उपसर्ग तथा परीषहोंको सहन करता हुआ ही अनेक

१—घोटक, लता, स्तंभ, आदि १८ दोष कायोत्सर्गके अतीचार।

प्रकारके कर्मविकारोंका अतिशय कर नाश करता है। इन कायोत्सर्गमें धर्म और शुक्लध्यानका चिंतवनही प्रधानतासे होता है। इसी कारण आत्मा निर्भयतासे कर्म निर्जरा करता है।

यह भी अन्य आवश्यकोंके समान नामादि भेदसे कारक चतुष्कके साथ मूलाचार अनगार धर्मामृतमें साङ्गोपागतासे वर्णन किया गया है। और उसका विधि-विधान भी वहा पूर्ण रूपसे है।

इसको पूर्ण रूपसे वही शक्तिशाली धारण कर सकता है कि जिसका शरीर पर पूर्ण काबू है। इसके धारणका प्रमाण उत्कृष्ट मध्यम जघन्यके भेदसे तीन प्रकार है और वह दैवसिकादि प्रतिक्रमणमें अनेक भेदरूप उश्वास प्रमाणोंसे वर्णित है।

जघन्यमें इसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टमें एक वर्षका प्रमाण है मध्यमें अनेक विकल्पस्वरूप है। उश्वास गणना नमस्कार मन्त्रके दो चरण चिंतवनरूपने शास्त्रमें की गई है। और वे (श्वासोछ्वास) कहा पर कितने है उन सबका प्रमाणरूपसे कथन मूलाचार वगैर. ग्रन्थोंमें विस्तारसे किया गया है।

इस विग्रहात्मक अर्थके अलावा—कायोत्सर्गके और भी विग्रहमार्गसे अन्वयात्मक (यौगिक) अर्थ होते है जैसे कि कायकी, उत्—उत्कृष्ट, सर्ग—रचना, जिन पद्मासन मयूरासन कुक्कुटादि ८४ चौरासी आसनों द्वारा हो वह कायोत्सर्ग है। अथवा—कायकी उत्—उत्कृष्ट प्रत्याख्यानादि गुणोंके लिये जो सर्ग—रचना सो भी कायोत्सर्ग। इन दो अर्थोंसे यह स्वत.सिद्ध है कि कायोत्सर्ग आसन भेदसे अनेक प्रकार है तथा आवश्यक गुणोंकी सिद्धिके लिये किया जाता है। इसके पाठकी भी रचना ऐसे शब्दोंमें है कि जिसके पढने सुननेसे कायोत्सर्गोंकी कायोत्सर्गता सफल होती है इसी हेतु इसके पाठका पढ़ना सुनना अवश्य कर्तव्यमें परिगणित है।

इस आवश्यकसे धीरता, दृढता, गंभीरतारूप आत्मशक्ति पैदा होती है और आलस्य जड़ताका प्रभाव होता है तथा ममताका सर्वथा अभाव होकर समताकी प्राप्ति होती है।

जैन सम्प्रदायमें आत्मशुद्धिके निमित्त जिस प्रकार छह आवश्यक पाठ नियुक्त (अखंड उपाय) माने गये हैं वैसे अन्य सम्प्रदायवाले भी अपने मतानुसार सध्या वगैरःको अवश्य कर्तव्य मानते हैं तथा जैन जैनेतर सभी अपनी २

विधिके मुआफिक सम्प्रदाय सूचक कर्तव्य समझकर भी पालते हैं। परन्तु मतके यहां उद्देश्य आत्मशुद्धि तथा अपराधक्षान्ति है।

दिगम्बर सम्प्रदायमे आवश्यकोंके साथ जो निर्युक्ति शब्दका सम्बन्ध पाया जाता है और वह मुनि धर्म प्ररूपक अति प्राचीन मूलाचार ग्रथनें विशेषतासे है उसका अभिप्राय यही है कि "ये आवश्यक मुनि धर्मकी साधनामें अखड उपाय है इसमें कुतर्कको अवकाश नहीं किंतु सर्वयुक्ति सिद्ध येही अवश्य कर्तव्यतासे आवश्यक है"। इस अर्थकी यह पूर्ण शक्ति निर्युक्ति शब्दमे है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायने तो इस शब्दसे इतना ममत्व जनाया है कि ग्रथका नाम भी आवश्यकनिर्युक्ति या निर्युक्ति रख लिया। उसमें मूलाचारकी जो गाथा ये विकल तथा पूर्ण रूपमे मिलती है यह कुछ विशेषताकी सूचक है। आवश्यक निर्युक्तिके ग्रथकर्ता जो भद्रबाहु स्वामी उनके यहा माने जाते हैं वह भी आचारागादि सूत्रके कर्ता सुधर्माचार्यके समान है। क्यों कि उनके यहा ऐसा कथन है कि महावीर स्वामीके २०० वर्षवाद जिन सूत्रके सग्रह करनेके लिये पहली समति पटनामे वैठी थी उस समय अग छिन्न हो गये तथा वह संग्रहीत भी दुष्कालादि पड़नेके सवव वहुत कुछ छिन्नभिन्न हो गया था। जो कुछ अवशिष्ट रहा उसका उद्धार वलागाम (वल्लभी) मे देवर्धिगणीने किया इससे यह तो स्पष्ट है कि जो सूत्र उनके यहा मिलते हैं वे खास सुधर्माचार्यके नहीं होकर भी सुधर्माचार्य कृत कहे जाते है। ऐसाही निरुक्ति तथा भद्रवाहुका भी सवंध हो तो आश्चर्य नहीं तथा मूलाचारके गाथा भी वहा दीखते है तो इसमें भी आश्चर्य नहीं क्योंकि वहा ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि नवीन क्रान्तिमें प्राचीनताके प्रायः वहुत अश भी पाये जाते हैं।

भाषाविषयक विचार

दि. जैनधर्मका पूर्ण शास्त्र साहित्य तो द्वादशागतामेंही था परंतु उसीका आशिक साहित्य सस्कृत और मागधी प्राचीन भाषामें जो उपलब्ध है वह पूर्ण प्रमाण कोटिमें है तथा कनडी और तैलिग भाषाका जो साहित्य है वह भी प्राचीनताके नातेसे भी वैसाही मान्य है जैसा कि सस्कृत और प्राकृत शास्त्र

---

१ जैनमित्र अक १९ चैत्रवदि ७ सप्तमी स. १९८० विक्रम वीर सं. २४५० के पृष्ठ २०७ में पुरातत्व त्रैमासिक लेखका विषय।

साहित्य मान्य है क्योंकि यह भी साहित्य उन्हीं ऋषियोंने लिखा है कि जो संस्कृत और मागधीके पूर्ण ज्ञाता होकर भी देशभाषाओंके पूर्ण रूपसे जानकार थे। इस लिये हमारे हिसाबसे चारोंही भाषाके शास्त्र प्रमाणकोटिमें बराबर है। तथा उनका जिन २ हिंदी मरेठी गुजराती वगैर देशभाषाओंमें साराश है वह भी हमारे लिये मान्य है। आवश्यक विषयक जो हमारे यहा पाठ संस्कृत वगैरः प्राचीन भाषाओंमे उपलब्ध हैं वे तो हमारे लिये बीजाक्षरकी मान्यताके समान हैं। तथा जो भाषापाठ है वे भी विशेष विद्वानोंकी भावपूर्ण कृति होनेसे हमारे लिये हितावह है।

पूर्णता और विकलता।

दिगम्बर सम्प्रदायके समान श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी आवश्यकोंकी संख्या तो छह भेदरूपही मानी है परतु उनके भीतरी भेदोंमे कहीं २ विकलता है जैसे कि **प्रतिक्रमण** नामक आवश्यकके श्वेताम्बर संम्प्रदायमें पाच भेद है और दिगम्बर संप्रदायमे **यावज्जीविक** (उत्तमार्थ) और **ऐर्यापथिक** दो भेद और हैं इस कारण यहा सात ७ भेद है। ये दो भेद सामिल होनेपरही पूर्ण प्रतिक्रमण होता है अन्यथा विकलतामे विकलही है। इसी प्रकार और भी वहा स्वरूप कथन विधि वगैरहमें विकलता है उसका वारीकीसे विचार करनेपर ज्ञान हो सकता है।

क्रमभेदमें यथार्थता कहां।

दिगम्बर सम्प्रदायमे पाचमा आवश्यक प्रत्याख्यान और छट्ठा कायोत्सर्ग है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इससे विपरीत है अर्थात् पाचमा कायोत्सर्ग और छट्ठा प्रत्याख्यान है। ये दोनों क्रम अपनी २ सम्प्रदायमें मान्य है परतु इनमें यथार्थ कौन और विपरीत कौन है जब इस प्रकारका विचार उपस्थित होता है तब उसके निर्णय करनेके लिये हमको निष्पक्ष दृष्टिसे वैसे साधनोंका आयोजन करना चाहिये जिसमें कि ध्येयकी यथार्थ सिद्धि हो। प्रत्याख्यानके लक्षणमें सचित्त अचित्त उपाधि तथा आहारके ममत्वविषयक त्यागका विधान है और कायोत्सर्गमे शरीर सम्बन्धि ममत्वके त्यागका विधान है और शरीरममत्वका त्याग अन्य उपाधियोंके त्याग पूर्वकही होता है। इस कारण प्रत्याख्यान पूर्वकही कायोत्सर्ग सिद्ध होता है। प्रत्याख्यान सर्व पदार्थका त्याग होकर भी शरीर सम्बधि ममत्वका वैसा त्याग नहीं था सो वह कायोत्सर्गमे आकर वैसा उत्कृष्ट त्याग हो जाता है कि

अनेक उपसर्ग परीषह आने पर भी आत्मस्वरूपसे नहीं चिगता। इस कारण दिगम्बर सम्प्रदायका जो क्रम है वही निष्पक्ष दृष्टिसे यथार्थ है॥

आवश्यकोंके मूलभेद

सर्व आवश्यकोंमें मुख्य भेद द्रव्य, भाव रूपसे जो वर्णित है उसका हेतु यही है कि इन दो भेदोंमें एक की भी कमी हो तो वह आवश्यक ही नहीं। क्योंकि भावके विना द्रव्य निष्प्रयोज है और द्रव्यके विना भाव भी ठहर नहीं सकता क्योंकि वह भावमें प्रधान साधन है तथा इनमें व्यवहार और पारमार्थिक जो भेद पाया जाता है उसका भी यही हिसाब है कि एक दूसरेके अभावमें मूल द्रव्यही नहीं रहता। यह क्रम जैन पदार्थोंमें सर्वत्र पाया जाता है उसका हेतु यही है कि पदार्थका स्वरूप ऐसा ही है इस लिये ऐसा वर्णन करनेसेही पदार्थका वर्णन सागोपाग स्वरूप होता है।

कुछ विशेष वक्तव्य।

प जयचद्रजी छावडाने पाहुड आदि अन्य ग्रथोंके समान इस ग्रथकी भी देशभाषा कर जैन समाजका बड़ा उपकार किया है। आपने किन किन ग्रथोंपर टीका की है तथा आप कैसे विद्वान् थे और कहाके थे इत्यादि वर्णन हम इस ग्रथमालासे प्रकाशित—आप्तमीमासा, प्रमेयरत्नमाला (परीक्षामुख), अष्टपाहुड ग्रथोंकी भूमिकामें कर चुके हैं वहासे पाठक महाशय जानें।

यह सामायिक पाठ सग्रह ग्रथ है और इसमें पाठ विशेप होनेसे प. जयचद्र-जीने २४ स्थलोंमें विभक्त किया है यद्यपि उन स्थलोंके खास तौर पर नाम नहीं दिये हैं तथापि वहा २ के पाठसे उस २ स्थलका नाम पढनेवालोंको मालूम पड जाता है। यही ग्रथ गुजराती अर्थ सहित भावनगरके दिगम्बर सघकी तरफसे प्रकाशित हो चुका है। इसमें जीवादि तत्वस्वरूप और सिद्ध पूजा ये पाठ और भी जादा हैं इस ग्रथका सग्रह कब किसने किया इस विषयका निश्चय न तो गुजराती अर्थके सामायिक पाठसे होता है और न प. जयचंद्रजी साहबने इस विषयमें कुछ लिखा है इस लिये इसके सग्रहमें हमारी सिर्फ ऊहापोहरूप कल्पना ही रह जाती है।

समाजमें इस समय हमारे यहाके कई एक पाठ प्रकाशित हुए प्रसिद्ध हैं। उनमें तीन पाठ हमारे पास भाई राजमलजी बड़जात्याने गिरनारजी वगैर की

यात्रा जाते समय इस ग्रथकी भूमिका बनवानेके निमित्त पालीतानासे भेजे हैं। उनमेंसे एक, अमितगति जी आचार्य कृत संस्कृतमें है जिसका कि ब्र. शीतल-प्रसादजी द्वारा किया हुआ अनुवाद है और दूसरा प. महाचद्रजीकृत भाषा सामायिक पाठ है। जिसपर प. नदनलालजी चावली (आगरा) द्वारा किया हुआ गुजराती अर्थ है। और तीसरा यही भावनगरकी तरफसे प्रकाशित हुआ गुजराती अर्थ सहित है। इस ग्रथमें कहीं २ प. जयचद्रजी द्वारा अनुवादित सामायिकपाठसे जादा कम पाठ है उसका निर्णय दोनों ग्रथ सन्मुख रखकर हो सकता है फिर भी विशेष सुभीतेके लिये हमने भी खुलासा कर इसी भूमिकाके साथ लगा दिया है। और वह यह है—

गुजराती अर्थसहितका जादा पाठ

पृष्ठ-(१) निस्संगोऽहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिपरीत्येक भक्त्या ।
स्थित्वा गत्वा निषिद्धयुच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम् ।
भाले संस्थाप्य बुद्धयाममदुरितहरं कीर्तये शक्रवंद्यम्
निद्रादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् ॥ १ ॥

पृष्ठ-(१२) सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो वरिष्टेभ्यः कृतादरः ।
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं नमस्कुर्वे पुनः पुनः ॥ ६ ॥
आई मंगलकरणे सिस्सा लँहुपारया हवंतित्ति ।
मज्झेअंवुच्छित्ती, विज्जाविज्जफलं चरमे ॥ ७ ॥

पृष्ठ-(१६) णमोकारं, पंक्ति ७।

पृष्ठ-(१८) ॐ नम· परमात्मने नमोनेकान्ताय संताय थोस्सामिहं ।
पंक्ति ३ ।

पृष्ठ-(३६) देवा सुरेन्द्रनरनागसमर्चितेभ्यः
पापप्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः ।
घंटाध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्य· ॥ ५ ॥

---

१ इसी संस्कृत पाठके ऊपर इनने हिंदी भाषामें भी छंदोबंध रचा है जोकि सार्थक संस्कृतके साथ प्रकाशित हो चुका है।

पं. जयचंद्रजीकृत देशभाषाका जादा पाठ।

पृष्ठ-(१४) वत्तीस दोषोंके अर्थ सहित नाम (देशभाषामें)

पृष्ठ-(५२) थोस्सामीत्यादि पूर्वोक्तं पठनीयम्, पक्ति १०।

पृष्ठ (५७) व्युत्सृज्यदोषान्निःशेषान्—इत्यादि १ छदसे लेकर—वोधिसमाधिविशुद्धि; इस छट्ठी आर्यातक ६ छंद।

पृष्ठ (५९) इच्छामि भंते—इत्यादि समाधि पाठ।

सामायिक वगैर करनेकी विधि शास्त्रोंके उन २ स्थलोंमें मिलती है, जहां कि उसका प्रकारण है। तथा सामायिककी विधि ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने हिंदी अर्थसहित संस्कृत पाठमें लिखी है और भावनगरसे प्रकाशित हुए गुजराती अर्थ सहित इसी पाठ सग्रहमे सामायिक और कायोत्सर्गकी विधि गुजरातीमें लिखी है पाठक गण वहासे जान सकते हैं।

निवेदन।

सभव है कि अज्ञान तथा प्रमाद जन्य दोषके कारण इस पुस्तकके सशोधन तथा भूमिकामें बहुतसी त्रुटिया रह गई होंगीं। क्योंकि छद्मस्थ दशामें ऐसा होना सभव है। अतः पाठक गण नीरसदोषभावको छोडकर गुणपय पानमें राजहसीय वृत्ति चरितार्थ कर हमे क्षमादान प्रदान करेंगें।

इस भूमिकाके वननेमें हमारे मित्र राजमलजी वड जात्या जो कि इस सस्थाके मत्री हैं, उनकी प्रेरणा तथा पुस्तकें भेजनेरूप साहाय्यसे हम कृत कार्य हुए हैं अत. हम उनके आभारी हैं और हमें उम्मेद है कि आपके उत्साह तथा परिश्रमसे यह सस्था योग्य समृद्धिका लाभ करेगी॥

मिति चैत्रवदि ११ सोमवार
स. २४५० वीर और १९८० वि.
ता. ३१-३-१९२४ ई.।

निवेदक—रामप्रसाद जैन,
फिलहाल बम्बई.
(जटोआ (आगरा) निवासी)

श्रीपरमात्मने नमः ।

जयपुरनिवासी स्वर्गीय पंडित जयचन्द्रजी छावड़ाकृत भाषावचनिकासहित सामायिक पाठ ।

दोहा ।

आदि ऋषभ सनमति चरम तीर्थंकर चउवीस ।
सिद्धसूरि उवझाय मुनि नमूं धारि कर सीस ॥ १ ॥
जिनवानी जिनधर्म फुनि चैत्य चैत्यके धाम ।
सब मिलि गिनि नवदेवता करिये सदा प्रणाम ॥ २ ॥
सामायिकको पाठवर पढ़ियो बहु मुनि राज ।
ताकी भाषा देशमय करूं स्वपरहित काज ॥ ३ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि अभिप्रेत प्रयोजन प्रगट करिये है—

मुनिपदवी लेतैं प्रतिज्ञा करै है,—जो मैं सर्वपापनूं रहित जो सामायिक चारित्र ताहि अंगीकार करूं हूं तापीछैं आहार विहार उपदेशादि प्रवृत्तिरूप होय तब छेदोपस्थापना चारित्ररूप होय है जानैं व्यवहार ऐसाही है। जो गृहस्थ अवस्थाविषैं सर्व पापरूप प्रवृत्ति थी

तातैं विरक्त होय सर्व पापके त्याग किये परंतु जेतैं सरागभाव है तेतैं पुण्यरूप प्रवृत्तिका आलंबन है, परम वीतराग चारित्रका उद्यमहै सो ताकै अर्थि तीन संध्या प्रभात मध्याह्न अपराह्न विषै उत्कृष्ट छह छह घड़ीका नियमकरि आहार विहार उपदेशादि क्रियातैं निवृत्त होय एकांतस्थानमैं बैठि अपने शुद्ध आत्मस्वरूपकै सन्मुख होय अन्य जे शुद्धआत्मस्वरूपरूप अर्हंत सिद्ध तथा शुद्धात्माका ध्याता आचार्य उपाध्याय साधु ए पंच परमेष्ठी तिनिका स्मरण ध्यानपूर्वक पाठ वा अपनी प्रवृत्तिविषै उपजे पाप तिनिका प्रतिक्रमण आदिक है ताका पाठ पढे है। तहां प्रथम तो एकांत स्थानक बैठे। ता पीछै प्रवृत्तिमैं दोष लागे होंय ताका वृथाकरणरूप प्रतिक्रमणपाठ हैं। ता पीछैं सर्वराग द्वेषसूं रहित जो समता भाव कहिये सामायिक ताका पाठ है। तापीछै चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका स्तवन तथा वंदनाका पाठ है। तापीछैं स्वाध्याय तथा कायोत्सर्गका पाठ है, इत्यादि। ऐसै षट् आवश्यक रूप मुनिराज नियमतैं नित्य प्रवर्तै है, सो पाठ प्राकृत वचन है, ताकी देश भाषामय वचनिका लिखिये है। ताकूं बांचि मंदबुद्धी भव्यजीवनिकूं अर्थ समझै तब सामायिककी विधिका स्वरूप जानि याविषै प्रवर्तनेकी रुचिकरै; ऐसा प्रयोजन है। तहां प्रतिक्रमणका पाठ ऐसा है—

पडिक्कमामि भंते इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते अइगमणे णिग्गमणे ठाणे गमणे चंकमणे पाणुग्गमणे विज्जुग्गमणे हरिदुग्गमणे उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणाय वियडिपइट्ठावणियाए जे जीवा एइंदिया वा वेइंदिया वा तेइंदिया वा चउरिंदिया वा पंचेंदिया वा णोल्लिदा वा पेल्लिदा वा संघट्टिदा वा संघादिदावा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा किरिच्छिदा वा लेसिदा वा छिंदिदा वा

भिंदिदा वा ठाणदो वा ठाणचंकमणदो वा तस्स उत्तरगुणं तस्स पायछित्तकरण तस्स विसोहिकरणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोसरामि। जयंअर्ह णमो अरहंताणं इत्यादि जाप्य ॥ ९ ॥

यह प्राकृत पाठ है।

याका अर्थ—भंते कहिये हे भगवन्! पडिक्कमामि कहिये मैं किये दोपका निराकरण करूंहूं। कैसाहूं मैं–अणागुत्ते कहिये मन वचन कायकी गुप्तिरहितहूं। अब किये दोप कहा[2] सो कहे हैं– विराधनासहित जो ईर्यापथकी क्रिया ताविषै, अतिगमन होतैं, निर्गमन होतैं, वैठतै, गमन करतैं, पदविक्षेप करतैं, प्राणीनि ऊपरि गमन करतै, वीज ऊपरि गमन करते हरित वस्तु ऊपरि गमन करतै. मल मूत्र खंखार नाक मलविकृति उपकरण कमडलु आदिक क्षेपतै, जे जीव एकेंद्रिय वेइंद्रिय तेइंद्रिय चतुरिंद्रिय पचेंद्रिय कू अपनें स्थानक जातैं रोक्या वा प्रेर्या वा परस्पर मेलाकरि पीड्या वा एकठा किया वा मान्या वा परितापित्त किया वा कतन्या चूर्ण किया छेद्या भेद्या हो, अपने स्थानक वैठेनिकूं तथा स्थानकतै अन्यस्थानक जातेनिकू; ऐसैं, विराधना होतै तिस दोषका उत्तरगुण कहिये निराकरण करण हारा उत्कृष्ट गुण तथा प्रायश्चित्तरूप तथा तिस दोसका शोधन करण हारा जो अरहत भगवंतका नमस्कार जेतै करूंहू तेतैं पापका उपजावन हारा दुराचारसहित जो यहू मेरा काय ताहि छोड़हू, यातै ममत्व छोड़हू। ऐसैं कहिकरि "जय अर्ह णमो अरहताणं" इत्यादि जाप्य ९ करे। ऐसा प्रथम स्थल है ॥ १ ॥

१ "पज्जुवास" यह पाठ मुद्रित दशभक्तिनामक पुस्तकमें अधिक है २ यहासे यह प्राकृतपाठ मुद्रित "दशभक्तिमे" नहीं है।

आगें इसही अर्थका समुदायरूप श्लोक पढें हैं:—

ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादा-
देकेंद्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा ।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगांन्तरेक्षा
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥

याका अर्थ—ईर्यापथ चालता मैं जूडा प्रमाण विना देख्यां प्रमादतैं एकेंद्रियादि जीव समूहकी बाधा करी होय ताका मेरै पाप पंच परम गुरुकी भक्तितैं मिथ्या होउ ॥

आगें कहैं हैं जो गमन करतें हिंसा भई है तातैं सामायिक रूप निमित्तकरि गमनका त्याग करूं हूं,—

श्लोक ।

आर्या—करचरणतनुविघातादटतो निहतः प्रमादतः प्राणी ।
ईर्यापथमिति भीत्या मुञ्चे तद्दोषहान्यर्थम् ॥

याका अर्थ—मैं हस्त पाद शरीरके विघाततैं चालतें प्रमादथकी जीव हत्या ताका भयतैं तिस दोषकी निवृत्तिकै अर्थि ईर्या पथकूं छोड्रूं हूं । भावार्थ—गमनकूं छोडि निश्चल बैठूं हूं ॥

आगें ईर्यापथका आलोचना प्रतिक्रमणका पाठ हैं.—

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेउं—पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमचउदिसु विदिसासु विहरमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा दट्ठव्वा डवडवचरियाए पमाददोसेण पाणभूदजीवसत्ताणं उववादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

१—मुद्रित दशभक्तिनामक प्रतिमें ' भन्वेण ' इतना पाठ इसके आगे और है।

याका अर्थ—भते कहिये हे भगवन्! ईर्यापथकी आलोचना करनेकूं चाहूं हूं—मोकूं पूर्व उत्तर दक्षिण पश्चिम इनि च्यारि दिशा निविषै तथा च्यारि विदिशानिविषै जूड़ा प्रमाण देखि चालणा योग्य है सो मैं जैसैं तैसैं विना देख्या ढवक ढवक उतावला चाल्यातैं प्रमाद दोषतैं प्राणी भूत जीव सत्त्व; प्राणी कहिये विकलत्रय, भूत कहिये वनस्पति कायिक, जीव कहिये पचेंद्रिय, सत्व कहिये पृथिवी अप तेज वात कायिक, इनिका उपघात कहिये पीडा करी होय तथा कराई होय तथा करताकूं भला जाण्या होय ताका पाप मेरैं मिथ्या होहु। ऐसा दूसरा स्थल है॥ २॥

आगैं शान्तभावकै अर्थि शांतिपाठका अष्टक पढ़ै हैं—

शार्दूलविक्रीडितछन्द।

न स्नेहाच्छरणं प्रयांति भगवन्! पादद्वयं ते प्रजा
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः संसारघोरार्णवः।
अत्यंतस्फुरदुग्ररश्मिनिकरव्याकीर्णभूमंडलो
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिलच्छायानुरागं रविः॥ १॥

याका अर्थ—हे भगवान्! प्रजा कहिये लोक हैं ते तुम्हारे चरणजुगलकै शरण आवै है ते स्नेहथकी न प्राप्त होय हैं, तो इहां काहे तैं आवै है? ताका कारण कहै हैं—जो विचित्र कहिये अनेक प्रकार है दुःखका समूह जामैं ऐसा जो ससाररूप भयानक समुद्र सो कारण है, याके दुःखके पीडे तुम्हारे शरण आवै हैं। इहां दृष्टांत कहैं हैं.—जैसैं अत्यंत फैलते जे तीव्र किरण तिनिका जो समूह ताकरि व्याप्त किया है पृथिवीमडल जानैं ऐसो ग्रीष्मकालको सूर्य है सो चद्रमाके किरण तथा जल तथा छाया तांविषै अनुकरण करावै है।

भावार्थ—श्रीअरहंत भगवान् अन्तरंगमें तौ अनंत चतुष्टयादि गुणनिकरि अर बाह्य शरीरकी आकृतिकरि शांतिरूप है. अर और प्राणी संसारके दु:खनिकरि ततायमान हैं सो वैसा अरहंतका दर्शन स्मरण ध्यान करैं तौ शांत परिणाम होय तातैं सामायिक करताहू शांतभाव कै अर्थि अरहंतका शरण ले है ॥ १ ॥

क्रुद्धाशीविषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो
विद्याभैषजमंत्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा ।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुगस्तोत्रोन्मुखानां नृणां
विघ्नाः कायविनाशकाश्च सहसा शाम्यंत्यहो विस्मयः ॥ २ ॥

याका अर्थ—हे भगवन्! तुमारे चरणकमलका युगलक स्तोत्रकै अर्थि सन्मुख भये मनुष्यनिके कायकू विनाश करणहारे जे विघ्न ते शीघ्रही विलय जाय हैं, यहु बडा आश्चर्य है: इहां उपमा कहै है—जैसैं क्रोधसहित जो आशीविष कहिये सर्प ताकरि डस्या जो पुरुष ताकै दुर्जय जो विषकी ज्वालावलीको सामर्थ्य सो विद्या कहिये मुद्रा मंडलादिक क्रिया तथा औषधि तथा मंत्र तथा जल तथा होम इत्यादिककरि क्षय जाय है तैसैं विघ्न क्षय होय है। भावार्थ—सर्व उपचारनिविषैं वीतरागका नाम स्मरण ध्यान उत्तम है तातैं सामायिकका कर्त्ताहू अपनें सामायिककी सिद्धिकै अर्थि शरीर तथा परिणामकी स्थिरता चाहता स्तोत्र पढ़ै है तिनि जिनेंद्रके स्तोत्र मंत्रनितैं सर्व विघ्न विलय होय हैं ॥ २ ॥

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते!
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात् पीडाः प्रयांति क्षयम् ।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ॥ ३ ॥

याका अर्थ—ताया शुद्ध सुवर्णसारिखा जो मेरुगिरि ताकी शोभासारिखी गौरी उज्ज्वल है देहकी दीप्ति जिनिकी ऐसे जे अरहत भगवान ताका सबोधन हे भगवन् । तुमारे चरणनिकू प्रणाम करनेंतैं पुरुषनिकी पीडा क्षय जाय है । इहा उपमा कहै है—जैसें उगता सूर्यके फैलते जे किरणनिके सैकडे तिनिका घातकरि निकासी हुई अनेक प्राणीनिके नेत्रनिकी द्युतिकू हरणहारी रात्रि जो है सो विलय जाय है तैसैं पीडा विलय जाय है । भावार्थ श्री अरहत भगवान्के नमस्कारादिक तै अन्तरग बाह्य पीडाका अभाव होय है तातैं सामायिकका कर्त्ता अपने निर्खेद सामायिककी सिद्धिकै अर्थि नमस्कार करैं है ॥ ३ ॥

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यंतरौद्रात्मका
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः ।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्रदावानला–
न्न स्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम् ॥४॥

याका अर्थ—हे भगवन् ! जा जगतविषैं कालरूपी तीव्रदावानल अग्नि है सो कैसाक है—तीन लोकके स्वामी इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्त्ती जे है तिनिका भगकरि पाई है जीति जानैं, बहुरि कैसाक है अत्यन्त रौद्र भयानक है स्वरूप जाका ऐसा अग्निका तुमारी स्तुति रूपी नदी करि निवारण जो न होय तौ या आगैं ससारी जीव कै अनेक जन्मके सैकडे हैं तिनिविषैं कौन प्रकारकरि कौन जीव बचै, सदा भस्मही होबो करै । भावार्थ—यहु भगवानकी स्तुतिही प्राणीकू जन्ममरण तैं रहित करै है तातैं सामायिकका कर्त्ता याहीकू बार बार पढै है ॥ ४ ॥

लोकालोकनिरंतरप्रविततज्ञानैकमूर्त्ते ! विभो !
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रय !

त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवंत्यामया
दर्पाध्मातमृगेंद्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुंजराः ॥ ५ ॥

याका अर्थ—हे विभो ! कैसे हो तुम—लोक अलोक विषै अंत-रहित फैल्या जो ज्ञान ताहिकी एक मूर्ति हो, बहुरि कैसे हो अनेक रत्ननिकरि रच्या है दंड जाकै ऐसा जो देदीप्यमान श्वेत छत्रका त्रय सो तुमारै पाइये है ऐसे हो. अर तुमारे चरण युगलका पवित्र गीत कहिये स्तवन जो है ताका जो शब्द तातैं 'आमया' कहिये रोग जे हैं ते शीघ्रही जाते रहै है। इहां उपमा कहै है: जैसे गर्वका भर्‍या गाज्या जो सिंह ताके भयानक शब्दतैं वनके हस्ती भाजि जाय तैसें रोग पलाय जाय है। भावार्थ—भगवानके स्तवनतैं रोगभी जाते रहै हैं तातैं सामायिकका कर्त्ता वर्त्तमानमैं शातभावकी सिद्धिकै अर्थि आगामी संसार रोगकी निवृत्तिकै अर्थि स्तोत्र पढै है ॥ ५ ॥

दिव्यस्त्रीनयनाभिरामविपुलश्रीमेरुचूडामणे !
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामण्डल ! ।
अव्याबाधमचिंत्यसारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं ।
सौख्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते ॥ ६ ॥

याका अर्थ—हे भगवन्। कैसे हो तुम—उत्तम स्त्रीनिके नेत्र-निकूं प्यारा बडी शोभा करि संयुक्त मेरुके समान चूडामणि हौ: बहुरि देदीप्यमान ऊगता सूर्यकी द्युतिकूं हरण हारा प्राणीनिकूं प्यारा ऐसा तुमारा देहकी दीप्तिका मंडल है ऐसे हौ; अर जामैं बाधा नाहीं, तथा चिंतवनमें नहीं आवै ऐसा है सार जामे तथा जाकै तुल्य और नाहीं याहीतैं उपमारहित तथा शाश्वता अविनाशी ऐसा सुख तुमारे चरणकमलका युगलकी स्तुतिही करि पाइये है, अन्य कारण तैं नाही पाइये है।

भावार्थसामायिकका कर्त्ता वर्त्तमानमैं समता भावरूप सुख तथा आगामी मोक्षसुख चाहे है सो ऐसा सुख वीतरागकी स्तुतिही करि पाइये है तातैं याहीकू वारवार यादि करे है ॥६॥

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयं-
तावद्धारयतीह पंकजवनं निद्रातिभारश्रमम् ।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन् ! न स्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीवनिकाय एप वहति प्रायेण पाप महत् ॥७॥

याका अर्थ—हे भगवन् ! जेतैं तुमारे चरणयुगलका प्रसादका उदय न होय है तथा तुमारा स्वरूपकी यथार्थ श्रद्धा जेतैं न होय है तेतैं यह ससारके प्राणीनिका समूह बाहुल्यपणै बडे पापकू लिये वहै है । इहा दृष्टान्त कहै है, जैसैं जेतैं सूर्य प्रकाश करता सता उदय न होय तेतैं या लोकविषै कमलनिका वन निद्रारूप अतिभार खेद धारै है प्रफुल्लित न होय है तैसें ये प्राणी मिथ्यात्व अज्ञानकरि मूढ हुये ऐसे पापमैं प्रवर्त्तै है । भावार्थ—सामायिकका कर्त्ता भगवानका स्वरूप जानि श्रद्धावान भया है ताका आनद पाया है जातैं जेतैं भगवानका स्वरूप न जान्या तेतैं पापाचरणरूप प्रवर्त्त्या, अब तुमारा स्वरूप जान्या सो मेरै पाप नाहीं रहैगा, ऐसा जानि ऐसैं स्तुतिका वचन पढै है ॥ ७ ॥

शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र ! शान्तमनसस्त्वत्पादपद्माश्रया-
त्संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु वहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः ।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो ! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः ॥८॥

याका अर्थ—हे शान्तिनाथजिनेन्द्र ! वर्णे ही शान्तिके अर्थी-

प्राणी या पृथिवीतलके विषै तुमारे चरणकमलका आश्रयतै शात है मन जिनका ऐसे भये सते शातिकू प्राप्त भये है तातै हे विभो! तुमारे चरणयुगल तेहि भये इष्ट देव तिनिकी भक्ति थकी शान्तिका अष्टक स्तोत्र पढता जो मैं भक्त ता ऊपरि प्रसन्न दृष्टि करो, मेरा भी बाह्याभ्यतर शांतिकू करो । **भावार्थ**—जहा शातिक पौष्टिकादिक भले कार्य है तहा शातिनाथ ऐसा नाम धारक जो सोलमा तीर्थंकर ताका स्मरण ध्यान स्तोत्र पूजाका अधिकार है तातै सामायिककर्ता हू अपने बाह्याभ्यतर शातभावका अर्थी शान्तिनाथनामा तीर्थंकरहिका अष्टक पढै तथा शान्तिके कर्त्ता सर्वही तीर्थंकर है तातै सर्वही का स्तोत्र जानना ॥ ८ ॥ ऐसै तीसरा स्थल है ॥ ३ ॥

आगै सामायिककी प्रतिज्ञा करै है, तहा प्रथम इष्टकू नमस्कार करै है;—

नमःश्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ १ ॥

याका अर्थ—श्रीवर्द्धमान कहिये अतिम तीर्थंकर तथा सर्वहि अरहत, सो कैसें ? श्री कहिये लक्ष्मी अंतरग तौ अनतचतुष्टय अर बाह्य समवससारणादिक ता सहित जो वर्द्धमान अतिम तीर्थंकर तथा अंतरहित वृद्धिकू प्राप्त भये सर्वहि अरहत तिनिकै अर्थि नमस्कार होहू। कैसा है भगवान्! उडाये हैं पाप जिनिनै ऐसा है आत्म कहिये स्वरूप जिनिका, बहुरि कैसे है जिनिकी केवळज्ञानरूप विद्या अलोक-सहित जो तीन लोक तिनिकू प्रतिबिंबित करनेकू आरसेवत् है कि प्रकासै है ॥ १ ॥

जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्म्मबन्धं
प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम् ।

अनन्तबोधादिभवं गुणौघं
क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥ २ ॥

याका अर्थ—उपाडे हैं कर्मबंध जिहि, बहुरि समीचीन मार्गका प्रकट किया है स्वरूप जिहि, बहुरि अनतज्ञानादिककी है उत्पत्ति जिनिकै, बहुरि गुणनिके समूह हैं ऐसे जिनेन्द्रकू नमस्कार करि क्रिया-कलाप कहिये सामायिक विषै क्रिया चाहिये ताका समूहकू प्रगटपणैं कहूगा, ऐसी प्रतिज्ञा है ॥ २ ॥

अब प्रथमही कहा करै सो कहै हैं:—

खमामि सव्वजीवाणं सव्वेजीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झ ण केणवि ॥ ३ ॥

याका अर्थ—मैं सर्व जीवनिकू क्षमा करू हू, सर्वही जीव मेरे ऊपरि क्षमा करो, मेरैं सर्व प्राणीनितैं मैत्रीभाव है, मेरा वैर काहूसूभी नाहीं है। ऐसै सर्व प्राणीनिकू आप समान जानि मैत्रीभाव करै ॥ ३ ॥

बहुरि कहै हैं;—

रागबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्त भयं सोगं रदिमरदिं च वोसरे ॥ ४ ॥

याका अर्थ—मैं रागकरि परद्रव्यसू संबंध तथा द्वेष तथा विषयादि विषैं हर्ष तथा विषयादि निमित्त दीनभाव तथा मानकषायतैं भया उद्धत भाव तथा भय तथा इष्टवियोगका शोक तथा भले भोजनादिक मिले रतिभाव तथा बुरे मिले अरतिभाव तथा ऐसे सर्वही भावनिकू छोड़ू हू। ऐसैं सर्व परद्रव्यनि तैं राग द्वेष हर्षविषाद भाव छोडै ॥ ४ ॥

बहुरि पहलैं किये ऐसे भाव तिनिका प्रतिक्रमण करै हैं:—

हा दुट्ठ कयं हा दुट्ठ चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतो अंतोउज्झमि[1] पच्छत्तावेण वेयंतो ॥ ५ ॥

---

१ उज्ज्वलामि ।

दव्वे खेत्त काले भावे य कदावरगहमोहणय ।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचिकायेण पडिकमणं ॥ २ ॥

याका अर्थ—हाय मैं दुष्ट कहिये दोषसहित खोटा कार्य काय करि किया होय, दुष्ट मन करि चिंतवन किया होय दुष्ट वचन करि कह्या होय, तिनिका पछतावा करि वेदतासता मांहीं मांहीं दाहक प्राप्त होऊं हूं॥

द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं किया अपराधका शोधनहारा मन वचन कायकरि प्रतिक्रमण करूं हूं । कैसा हूवा करूं हूं अपनी गर्हा कहिये भगवानके निकट दोष कहना अर निंदा कहिये अपने दोष आपही यादिकरि पछतावा करणा, ऐसे निंदा गर्हा करि सहित हूवा सन्ता प्रतिक्रमण करूं हूं ॥ ऐसै प्रतिक्रमण करै ।

अथ कृत्यप्रतिज्ञा । भगवन्नमोऽस्तुते एषोऽहं देव—
वंदनां कुर्यामिति सामायिकस्वीकारः ।

याका अर्थ—अथानतर कृत्य कहिये करने योग्य जो सामायिक ताकी प्रतिज्ञा ऐसैं हैं—हे भगवन्! तुमारे अर्थि नमस्कार करूं हूं, यह मैं देववंदना करूं हूं । ऐसै उच्चारणकरि सामायिक अंगीकार करै है । ऐसै चौथा स्थल है ॥ ४ ॥

आगै जो करने योग्य है सो कहे हैं । तहां प्रथमही सामायिकका स्वरूप कहैं हैं;—

श्लोक—समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम्॥ १ ॥

याका अर्थ—जहां सर्व जीवनिविषैं तौ समताभाव जो जैसा मैं हूं तैसैंही सर्व जीव हैं राग द्वेष करने योग्य कोऊही नाहीं ऐसा भाव, बहुरि संयम कहिये इन्द्रियविषयका परिहार तथा प्राणिपीडाका परिहार

१ भीतर।

जामें पाइये. वहुरि शुभभावना कहिये परका उपकार वीतरागकी भक्ति जिनवाणीका अध्ययन शुद्धात्मस्वरूपका स्मरण ध्यान ससारसू निवृत्त होनेके परिणाम द्रव्यादिक शुभकार्यनिविषै लगावनां ऐसै वारवार भावना होय. वहुरि आर्तध्यान रौद्रध्यानका परित्याग होय, जाकू सामायिक नाम व्रत कहिये ॥ १ ॥

आगैं मगलकै अर्थि नमस्कार करै है,—

श्लोक—सिद्धं संपूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रपतिपादनम् ॥१॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेसरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥ २ ॥

इनिका अर्थ—मैं सामायिक कर्त्ता जोहू सो महावीर अंतिम तीर्थंकर है ताहि नमस्कार करू हू, कैसे है—सिद्ध है जिनिकै सर्व अभिप्रेत निष्पन्न भये है, वहुरि सपूर्ण किये है भव्य जीवनिके प्रयोजन जिनि, वहुरि सिद्धि नां मोक्ष ताके उत्तम कारण है, वहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके प्रतिपादन करण हारे है, वहुरि सुरेन्द्रके मुकटकरि आलिंगित है चरणकमलका किरणरूप केसर जिनिका, वहुरि तीन लोकविषै मगलरूप है, तथा मगलके कर्त्ता ऐसे हैं ॥

ऐसैं मगलकरि मगल करनेका प्रयोजन कहै है,—

श्लोक—आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः ।
तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तदविघ्नप्रसिद्धये ॥ १ ॥

याका अर्थ—पडित पुरुष कार्यकी आदिविषै तथा मध्यविषै तथा अतविषैं मंगल करना कह्या है सो ऐसा मगल जिनेन्द्रके गुणनिका स्तोत्र है तिसकू कार्यकी निर्विघ्नपणें सिद्धिकै अर्थि करिये है ॥

विघ्नाः प्रणश्यंति भयं न जातु
न क्षुद्रदेवाः परिलंघयन्ति ।
अर्थान् यथेष्टांश्च सदा लभन्ते
जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ॥

याका अर्थ—जिनोत्तम भगवान्के स्तोत्रकरि 'विघ्नाः' कहिये आरम्भ्या कार्यके घातक विघ्न ते नाशकूं प्राप्त होय है, बहुरि भय कदाचित् भी नाहीं होय हैं, बहुरि नीच देव उपद्रव नाहीं करै है, बहुरि जैसी वांछा होय तैसीही वस्तु सदा पावै है तातैं सामायिककर्त्ताहूं मंगल कियाहै ॥

ऐसै पांचवां स्थल कह्या ॥ ५ ॥

आगै कृतिकर्मका स्वरूप कहै है,—

दुउण्णदं जहाजादं वारसावत्तमेव य ।
चदुस्सिर तिसुद्धिं च किरियम्म पउंजदे ॥

याका अर्थ—यथाविधान नमस्कार होय, बहुरि बारह आवर्त्त, बहुरि च्यारि शिरोन्नति, मन वचन कायकी शुद्धता, ऐसै कृतिकर्म कीजिए ॥

आगै कृतिकर्मकी शुद्धताकूं दृढ करै है,—

गाथा—किरियम्मं पि करंतो ण होदि किरियम्मणिज्जराभागी ।
वत्तीसाणंण्णदरं साहुट्ठाणं विराहंतो ॥

याका अर्थ—जो साधु कृतिकर्म करै है तथापि जे बत्तीस दोष है तिनिमैंसूं एक दोषभी लगावै है तो कृतिकर्मका फल जो निर्जरा है सो न पावै है, तातै बत्तीस दोष टालि करै तब शुद्धता होय यथार्थ फल पावै ॥

इहां बत्तीस दोषनिके नाम तथा स्वरूप लिखिये है,—जो कृतिकर्म आदरविना करै ताकूं अनादर दोष कहिये १ जो गर्वकरि उद्धत होय

करैं सो स्तब्ध दोष है २ जो परमेष्टीनिकैं अतिनिकट बैठि करैं सो प्रविष्टदोष हैं ३ जो हाथ गोडा स्पर्शन करता करै सो परिपीडन दोष है ४ जो चलाचल भया तथा सशयवान भया करै सो दोपायुतदोष है ५ जो हाथका अगूठा ललाट देशमैं धारि करै सो अकुशित दोप है जो कडिकू काछिवाकीसी चेष्टा करता करैं सो कच्छपरींगिन दोप है ७ जो दोऊ पार्श्वकरि वदना करैं, अथ्यमेठकी [2] ज्यों काडिकू करि करैं सो मत्स्योद्वर्त्तदोप हैं ८ जो आचार्यादिकनिकी वदना दुष्ट परिणाम करि करैं सो दुष्ट दोप हैं ९ दोऊ हाथ बाधि करि अथवा हाथनि करि छाती स्पर्शता अथवा गोडा स्पर्शिकरि करैं सो वेदिकावद्ध दोप हैं १० जो मरण आदिका भय करि वदना करैं सो भयदोप हैं ११ जो गुरु आदिकतैं डरपता वदना करैं अतरगमैं परमार्थ नहीं सो वीभत्स दोप है १२ जो ऐसा अभिप्राय करैं जो मै वदना करूंगा तौ च्यारि प्रकारका सघ मेरा भक्त होय ऐसे अभिप्राय तैं करैं सो ऋद्धिगौरव दोप हैं १३ जो अपना माहात्म्य प्रकट करनेकू वदनादिक करैं ताकैं गौरवदोप हैं १४ जो गुरु आदिक न जानैं ऐसैं छिपि चोरकी ज्यों वदना करैं ताकै स्तेनित दोप हैं १५ जो देव गुरु तैं प्रतिकूल होय वदना करैं ताकैं प्रतिनीत दोप हैं १६ जो अन्य तैं कलह करि क्षमाया विना वन्दना करैं ताकैं प्रद्रुष्ट दोप हैं १७ जो अन्यकू तिरस्कार करि तथा अन्यकू भय उपजाय वदना करैं सो तर्जित दोप हैं १८ जो मौन छोडि वोलता वदना करैं ताकैं शब्द दोप हैं अथवा याका नाम शाठ्य दोपभी हैं सो मायाचारीसू करैं ताकू शाठ्य कहिये १९ जो आचार्यादिकका अपमान करैं सो हेलित दोप है २० जो कटी हृदय ग्रीवा देशकू भंगकरि अथवा ललाट कैं त्रिवली पाडि वदना करैं ताकै त्रिवलित दोप है २१ जो दोऊ हाथनिकरि मस्तककू स्पर्शता तथा गोडामैं मस्तककरि

वंदना करै ताकै कुंचितदोष है २२ जो आचार्यादिक देखता होय तब तौ भलेप्रकार वंदना अर न देखता होय तो जैसें नेम करै इत उत देखता जाय ऐसें करै ताकै दुष्टदोष है २३ जो आचार्यादिककूं न दीखै ऐसी जायगा बैठि वंदना करै अथवा भूमिकूं नीकै देख्या विना करै आचार्यादिककै पीछे बैठि करै ताकै अदृष्टदोष है २४ जो संघकूं कछू कर दे प्रसन्न करै ऐसा अभिप्राय होय तब मेरा दोष न देखै ऐसें वंदना करै सो संघकरमोचन दोष है २५ जो उपकरणादिक पाय वंदना करै ताकै आलब्ध दोष है २६ जो उपकरणादिककी वांछाकरि ताकै अर्थि वंदना करै ताकै अनालब्ध दोषहै २७ जो पाठ तथा ताका अर्थ ताका काल ताका परिणाम इनिकरि रहित वंदना करै ताकै हीन दोष है २८ जो वंदना स्तोककालमैं करि पीछै ताकी चूलिकाकूं बहुत काल लगावै ताकै उत्तरचूलिक दोष है २९ जो पाठकूं व्यक्त न पढ़ै तथा अगुल्यादि हुंकारादिककी समस्या करता वंदना करै ताकै मूकदोष है ३० जो पाठ कलकलाट शब्द करि पढ़ै अन्यका शब्द जाकरि न सुन्या जाय ऐसें करै ताकै दर्दुरदोष है ३१ जो एक जायगा बैठि हाथ जोडि सर्वकूं भ्रमाय वंदना करै, अथवा अतिउचा पंचमस्वरकरि करै ताकै चूलिप्लुत दोषहै ३२ ऐसैं बत्तीस दोष है। इनिकूं टालि सामायिकमैं वंदनादिकक्रिया करै ताकै निर्दोष कृतिकर्म होय है ॥

ऐसैं छठा स्थल है ॥ ६ ॥

आगैं कहै हैं—कृतिकर्म ऐसैं करना;—

गाथा—तिविह तियरणसुद्धं मयरहियं दुविहठाणपुणरुत्तं ।
विणयेण कमविसुध्दं किदिकम्मं होदि कायव्वं ॥

याका अर्थ—त्रिविध कहिये शब्द अर्थ तथा दोऊकरि शुद्ध अथवा मन वचन कायकी शुद्धता मदकरि रहित पद्मासन तथा कायो-

त्सर्ग दोय आसनकरि विनयसहित पूर्वाचार्यनिकी परिपाटीकै अनुसार कृतिकर्म करै सो पुनरुक्त कहिये क्रिया प्रति फेरि फेरि करै। अथवा दोय नमस्कार बारह आवर्त्त च्यारि शिरोनति अथवा प्रतिक्रमण स्वाध्याय वंदना तथा पंचनमस्कार ध्यान चतुर्विंशतिस्तवकी शुद्धताकरि, त्रिकरण शुद्ध कहिये कृत कारित अनुमोदनाकी शुद्धताकरि करै॥

आगैं कृतिकर्मकी शुद्धतानिमित्त विशेष कहै है,—

श्लोक—योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्त्तशिरोनतिः।
विनयेन यथाजातः कृतिकर्मामलं भजेत्॥

याका अर्थ—कृतिकर्मकै योग्य है काल आसन स्थान मुद्रा आवर्त्त शिरोनति जाकै असा जो नग्न दिगम्बर साधु सो निर्मल कृतिकर्मकूं सेवै॥

बहुरि कहै है;—

श्लोक—स्नपनार्चास्तुतिजपान् साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।
युंज्यां यथाम्नायमाद्यादृते सकल्पितेऽर्हति।

याका अर्थ—सामायिक करनहारा कहै है—मैं साम्यभावकै अर्थि प्रतिमाविषैं स्थापित जो अरहंत ताका स्नपन पूजा स्तुति जप यथाम्नाय करूंहूं, बहुरि प्रतिमा न होय तौ संकल्प मानि भावनिविषैं और कल्पि, ताविषैं स्नपन विनय पूजा स्तुति जप करूंहूं। भावार्थ—अर्हन्त वीतरागकी शान्त मूर्त्ति साम्यभावका कारण है तातैं ताका स्नपनपूजनादि उचित है सो सामायिकका कर्त्ता भावपूर्वक करै है॥

आगैं सामायिका फलकी महिमा कहै है,

एकत्वेन चरन्निजात्मनि मनोवाक्कायकर्मच्युते.
कैश्चिद्विक्रियते न जातु यतिवद्यद्भागपि श्रावकः।

येनार्हच्छ्रुतलिंगवानुपरिमग्रैवेयकं नीयते
भव्योऽप्यद्भुतवैभवेऽत्र न भजेत सामायिके कःसुधीः ॥

याका अर्थ—इस समयिकका करण हारा श्रावकभी मन वचन कायकी चेष्टारहित जा समै अपने आत्मस्वरूपविषै मुनिराजकीज्यों एकाग्रपणैं लीन होय ता समै कोई देव दानवादि उपद्रवके करणहारेहू न चलाय सकै है, ऐसा निश्चल भाव होय है, बहुरि घणा कहा कहिये जो अभव्य भी द्रव्यलिंगधारक मुनि होय सामायिककू करै तौ आश्चर्य कारी है विभव जामै ऐसे नवमां ग्रैवेयकताई पहुचै है. सो ऐसे सामायिकविषै .कौन सुबुद्धी यत्न न करै ? अवश्य करैही करै। बहुरि सुबुद्धि हूवा थका भी न करै तौ जाणिये याका भला होणा निकट आया नाही ॥

ऐसैं सातवा स्थल है ॥ ७ ॥

आगै करने योग्य कार्यकी विनती करै है;

अथ कृत्यविज्ञापनाः—भगवन्! नमोस्तु प्रसीदन्तु प्रभुपादाः वंदिष्येऽहमिति, एषोऽहं तावत् सर्वसावद्ययोगविरतोऽस्मि।

याका अर्थ—अथानतर करने योग्यकी वीनती करै है—हे भगवन्! तुमारे अर्थि नमस्कार होहु। प्रभुके चरण मेरै ऊपरि प्रसाद करौ, मैं वदना करूगा। ऐसैं वीनती करि पीछै कहै है:—जो मै प्रथमही समस्त पापयोग तै विरक्तहू ।

आगै कायोत्सर्गकी प्रतिज्ञा करै है;—

अथ पौर्वाह्णिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

याका अर्थ—अथानन्तर प्रभातकी देववन्दनाविषैं पूर्वाचार्यनिकी अनुक्रम परिपाटी करि समस्त कर्मके नाशनिमित्त भाव पूजा वंदना स्तवनसहित श्री चैत्यभक्तिका समस्त कायोत्सर्ग मैं करूं हूं॥

ऐसे आठवा सूत्र है॥ ८॥

आगे कृतिकर्मवंदना कहै है,—

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहु मंगलं केवलि पण्णात्तो धम्मो मंगलं॥ चत्तारि लोगोत्तमा अरहंत लोगोत्तमा सिद्ध लोगोत्तमा साहु लोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगोत्तमा॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पवज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलि-पण्णत्तो धम्मोसरणं पवज्जामि॥

अढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरहं-ताणं भयवंताणं अदीयरगणां तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारय-डाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचा-उरंगचक्कवट्टीणं देवाहि देवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं। करेमि भंते सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्च-क्खामि जावजीवं तिविहेण मणसा वचिसा कायेण ण करेमि ण कारेमि अण्णंपि करंताणं ण स मणुमण्णामि। तस्स भंते अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहं-ताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं

वोसरामि। जय अर्हं णमो अरहंताणं जाप्य दीयंते उच्छ्वासाः २७।

याका अर्थः—अरहतनिके अर्थि नमस्कार होहु, सिद्धनिके अर्थि नमस्कार, आचार्यनिके अर्थि नमस्कार, उपाध्यायनिकै अर्थि नमस्कार, सर्वसाधुकै अर्थि नमस्कार। बहुरि ये च्यारि मंगलरूप होय ताकू मगल कहिये। 'म' कहिये पाप ताकू गालै तथा 'मंग' कहिये सुख ताकू दे ताहि मगल कहिये सो अरहत मगल है, सिद्ध मगलहै, साधु मगल है, केवलीका भाष्या धर्म मगल है। बहुरि च्यारिही लोकविषैं उत्तम है, उत्तम वाकू कहिये जाके अनत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य होय तथा जे तिनिके साधक होय तथा जाके निमित्ततै ते अनत चतुष्टय पाइये; तहा अरहत लोकविषै उत्तम है, सिद्ध लोकविषैं उत्तम है, साधु लोकविषैं उत्तम है एहू अरहत सिद्धकू अनुचरैं हैं अनत चतुष्टयकू साधै है, केवलीका भाष्या धर्म लोकविषैं उत्तम है याके सेवनतै अनन्त चतुष्टयकी प्राप्ति होय है। बहुरि मैं इनि च्यारिनिके शरणैं प्राप्त हू; अरहतनिके सरणैं प्राप्त हू, सिद्धनिके सरणैं प्राप्त हू साधुनिकै सरणै प्राप्त हू, केवलिप्रणीत धर्मके सरणै प्राप्त हू, अविनाशी पदकू एही शरणा प्राप्त करैगा। बहुरि अढाई द्वीप, दोय समुद्र, पदरा कर्मभूमिविषैं जेते अरहत भगवत आदि धर्मकर्त्ता, तीर्थकर्त्ता, जिन, जिनोत्तम, केवली, सिद्ध, बुद्ध, निर्वाणप्राप्त, अतकृत संसारतैं पार करणहारे, धर्मके आचार्य धर्मके उपदेशक, धर्मके नायक, धर्मकी च्यारि श्रेष्ठ अनुयोगरूप सेना ताके चक्रवर्ती, देवनिके अधिदेव, ज्ञान, दर्शन, चारित्र इनि सर्वनिके अर्थि कृतिकर्म कहिये वनदादिक क्रिया करू हू। बहुरि हे भगवन्! सामायिक करू हू, सर्वणपयोगका त्याग करू हू, जेतैं जीवू जेतैं मन वचन काय करि न करू न कराऊ न

अन्य करतानैं भलो जाणूं। बहुरि हे भगवन्! ताके अतिचारका प्रतिक्रमण करूं हूं आपाकूं निंदूं हूं, जेतै अरहत भगवतकी उपासना करूं हूं, पापका उपजावना कुचेष्टाका करनहारा यह काय ताहि त्यागूं हूं याका ममत्व छोड़ूं हूं। ऐसे पढि बहुरि "जय अर्हं णमो अरहंताणं" इत्यादि सत्ताईस श्वासोच्छ्वाससमे नव जाप्य करै॥

ऐसैं नवमा स्थल है॥ ९॥

अथ चौवीस तीर्थंकरनिका स्तवन पाठ है—

गाथा—थोस्सामिहं जिणवेर तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे॥ १॥

याका अर्थ—मैं जिनवरनिकूं स्तवूंगा, कैसे हैं वे—तीर्थ जो धर्म ताके करणहारे हैं, बहुरि केवल ज्ञानविराजमान हैं, बहुरि अविनाशी है, कर्मशत्रुके जीतनहारे हैं, बहुरि मनुष्यनिमै उत्कृष्ट लोकनिकरि पूज्य है, बहुरि उडाया है कर्मरूप रजका मल ज्या, बहुरि पूज्य है ज्ञान आत्मा जिनिका ऐसे है॥ १॥

गाथा—लोकस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिसे चउवीसं चेव केवलिणो॥ २॥

याका अर्थ—लोकके उद्योत करणहारे धर्म तथा तीर्थ कहिये आगम ताके कर्त्ता जिन अरहत केवली चउवीस तिनिका स्तवन करूंगा॥ २॥

गाथा—उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पोमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे॥ ३॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि॥ ४॥

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदे अरिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥

इनिका अर्थ—वृषभ अजितकूं वंदूं हूं वहुरि संभव अभिनंदन वहुरि सुमति वहुरि पद्मप्रभ सुपार्श्व वहुरि चन्द्रप्रभ जिन इनिकूं वंदू हूं। वहुरि सुविधि है द्वितीय नाम जाका ऐसा जो पुष्पदन्त वहुरि शीतल श्रेयांस वासुपूज्य वहुरि विमल अनंत भगवान् धर्म शांति इनिहिं वंदू हूं। वहुरि कुंथुं जिनवरेन्द्र वहुरि अर मल्लि मुनिसुव्रत नमि अरिष्टनेमि तथा पार्श्व वर्द्धमान इनिहि वंदू हूं ॥ ३–४–५ ॥

गाथा–एवं मए अभित्थुया विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥

याका अर्थ—या प्रकार मेरे स्तवन विषय किये जे चउवीस तीर्थंकर जिनवर ते मेरे परि प्रसन्न होहु, कैसे हैं—दूरि किया है कर्म-रज़रूप मल जिनिनै वहुरि नष्ट भये है जरा मरण जिनिके ऐसे हैं ॥

गाथा–कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥

याका अर्थ—ए लोकके विषै उत्तम प्रसिद्ध जिनि मैं स्तव्या वंद्या पूज्या मोकू आरोग्य, ज्ञानका लाभ. समाधि रत्नत्रयकी प्राप्ति द्यो ॥ ७ ॥

गाथा–चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपहा सत्ता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ८ ॥

याका अर्थ—चन्द्रमातै भी अतिनिर्मल, सूर्यतै अधिक प्रकाशमान समुद्रसारिखे गंभीर ऐसे सिद्ध कहिये आत्मस्वरूपकी जिनिकै सिद्धि भई ते मेरै ताईभी सिद्धि कहिये मोक्ष द्यो ॥ ८ ॥

ऐसा इसका स्वरूप है ॥ १० ॥

श्लोक—यावन्ति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावन्ति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहम् ॥

याका अर्थ—तीन भवनविषै जेती जिनप्रतिमा विद्यमान हैं तिनिकूं भक्तिकरि निरन्तर नमूं हूं ॥

हरिणीछन्द।

जयति भगवन् हेमांभोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥१॥

याका अर्थ—भगवान् सर्वोत्कृष्टताकरि वर्ते है जाके चरणयुगल आयकरि जिनिके परस्पर वैर पाइये ऐसे बहुरि कलुष है हृदय जिनिका अभिमानकरि उद्धत ऐसे प्राणी भी कलुषवैरभावरहित हूवा संता विश्वासकूं प्राप्त होय है, कैसे है चरणयुगल—सुवर्णमय कमलनिपरि प्रचार-करनेकरि स्फुरायमान है बहुरि देवनिके मुकुटनिकी छायासबधी उदय भई जो प्रभा ताकरि स्पर्शे हैं। भावार्थ—देव नमस्कार करैं हैं ॥

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगतिविपथक्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्यांगीभावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ॥२॥

याका अर्थ—तहां पीछे कहे है—कल्याणरूप बहुरि प्रकर्षपणैं वध्या है महोदय जातैं ऐसा जो धर्म सो सर्वोत्कृष्टरूप वर्तो, कैसा है—कुगतिका मार्ग तैं भया जो क्लेश तातैं प्रजाकूं छुडावै है बहुरि जिनेन्द्रके

वचनरूप अमृत है सो संसारतें रक्षा करनहारा होउ कैसा है—पुष्ट जे द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयरूप भंग तिनिकै अंगांभावतें भेदरूप रचित है, बहुरि अक्षर पद वाक्य तें तीन प्रकार है. अथवा अर्थपद प्रमाणपद मध्यपद भेदतें तीन प्रकार है. अथवा अंग पूर्व प्रकीर्णक भेदतें तीन प्रकार है ॥

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभावविभाविनी ।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघटय्य निर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ॥ ३ ॥

याका अर्थ—तहां पीछैं कहै है—जिनराजकी वित्ति कहिये केवलज्ञानरूप संवेदन सो जयवंतो प्रवर्तो. बहुरि हमकूं अनुपम सुखका द्वार उघाडी अर नहीं है ज्ञानदर्शनावरणरूप रज जामैं, बहुरि नहीं है अंतरायरूप आगल जामैं, बहुरि अविनश्वर बहुरि अव्यय कहिये हानि तैं रहित ऐसा मोक्ष द्यो कैसी है केवलज्ञानरूप वित्ति—अनेक ज्ञेयनिकी कल्लोलरूप तरंग जामैं पाइये है, बहुरि उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप जो द्रव्यस्वभाव ताकी प्रकाशनहारी है ॥ ३ ॥

ऐसैं ग्यारमा स्थल है ॥ ११ ॥

आगै नव देवताकूं क्रमरूप नमस्कार करै है—

आर्या—अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः ।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥ १ ॥

याका अर्थ—अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय बहुरि तैसैंही साधु सर्व क्षेत्र कालविषै हैं तिनि सर्वनिकै अर्थि नमस्कार हो, कैसेहैं—सर्व जगतकरि वंदिवे योग्य हैं ।

आर्या—मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः॥

याका अर्थ—अरहंतनिकै अर्थि सदा नमस्कार होहु, कैसे है मोह राग द्वेषादिक सर्व दोष तेहि भये शत्रु तिनिके घातक है, बहुरि हण्या है 'रज' कहिये ज्ञानदर्शनावरण जिन्होंने, बहुरि दूर भया है रहस्कृत कहिये अन्तरायकर्म जिनिकै, बहुरि पूजायोग्य है॥

आर्या—क्षान्त्याऽऽर्जवाऽऽदिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुम्।
शुभधामनिधातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्॥

याका अर्थ—जिनेन्द्रका भाष्या धर्मकूं मैं वंदूहू, कैसा है क्षमा आर्जव आदि जे गुणनिके समूह तेही है भले साधन जाकै, बहुरि समस्त लोकका हितका कारण है, बहुरि शुभ धाम जो स्वर्ग मोक्ष तिनिविषै स्थापन हारा है॥

आर्या—मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैकज्योतिरमितगमयोगी।
सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे॥

याका अर्थ—मैं जिनराजके वचननिकूं सदा वंदूहूं, कैसे है मिथ्याज्ञानरूप अंधकारकरि आवऱ्या जो लोक ताके प्रकाशनेकूं अद्वितीय ज्योति है, बहुरि अनंत ज्ञानका उपजावनहारा तथा अमित ज्ञान जो श्रुतज्ञान ताका संबंध करनहारा है, बहुरि अंग प्रकीर्णक सहित है, बहुरि अन्यवादीनिकरि अजीत है॥

आर्या—भवनविमानज्योतिर्व्यन्तरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवंदितानां त्रेधा वन्दे जिनेन्द्राणाम्॥

याका अर्थ—भवनवासी कल्पवासी ज्योतिषी व्यन्तर इनि देवनिके विमाननिविषै तथा मनुष्यलोकविषै जे जिनेश्वरकी प्रतिमा है

तिनिकू मन वचन काय करि मैं वन्दू हू, कैसी हैं—तीन जगतकरि वन्दनीक हैं ॥

आर्या—भुवनत्रयेऽपिभुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तॄणाम् ।
वन्दे भवाग्निशान्त्यैं विभवानां मालपालीस्ताः ॥

याका अर्थ—तीन भवनविषैं जे तीन भवनका स्वामी इद्र धरणेंद्र चक्रवर्ती तिनिकरि पूज्य अर ससारकरि रहित ऐसे तीर्थंकर हैं तिनिके चैत्यालयनिकी पक्ति प्रसिद्ध है तिनिहीकूं ससाररूप अग्निकी शान्तिकें अर्थि वदू हू ॥

आर्या—इति पंच महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमला दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टाम् ॥

याका अर्थ—ऐसै पच परमेष्ठी जिनधर्म जिनवचन जिनप्रतिमा निर्मल जिनमदिर नव देवतानिकू मैं नमस्कार किया सो मोहि बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति द्यो, कैसी है बोधि पडितलोकनिकै इष्ट ॥

ऐसै बारमा स्थल है ॥ १२ ॥

आगै जिनेन्द्रके प्रतिमा वा मदिर तिनिका विशेप वर्णन करि नमस्कार करै है,—

काव्य ।

अकृतानि कृतानि चाऽप्रमेय-
द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु ।
मनुजामरपूजितानि वन्दे
प्रतिबिंबानि जगत्रये जिनानाम् ॥ १ ॥

याका अर्थ—तीन जगतमें उद्योतसहित मन्दिरनिविषैं अकृत्रिम तथा कृत्रिम अमरजादिक नुतिसहित मनुष्य देवनिकरि पूज्य जिनेश्वरके प्रतिबिंब हैं तिनिकूं मैं वंदूं हूं ॥ १ ॥

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टी-
भुवनेषु त्रिषु भूतये प्रवृत्ताः।
वपुषाऽप्रतिमाः जिनोत्तमानां
प्रतिमा' प्रांजलिरस्मि वन्दमानः ॥ २ ॥

याका अर्थ—मैं जिनेश्वरकी जे प्रतिमा तिनिकूं वदता संता हस्त अंगुलि जोड़ूं हूं, कैसी हैं प्रतिमा—भामंडलकरि देदीप्यमान है शरीरयष्टि जिनिकी, बहुरि कैसी है—तीन भवनके विषै प्राणीनिकूं संपदाके अर्थि अनादितैं प्रवर्ती हैं, बहुरि कैसी हैं—शरीरकरि इनि समान और नाहीं है अथवा जिनेश्वरके शरीरसमान हैं ॥ २ ॥

विगतायुधविक्रियाविभूषाः
प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणां।
प्रतिमा प्रतिमागृहेषु कान्त्या-
प्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे ॥ ३ ॥

याका अर्थ—मैं जिनेश्वरकी प्रतिमा जिनमंदिरनिविषै है तिनिकूं पापकी शांतिके अर्थि वंदूं हूं, कैसी है—नाहीं है आयुध तथा विकार तथा आभूषण जिनिकै, बहुरि कैसी है—जैसैं जिनेश्वर स्वभाव विषैं तिष्ठै है, तैसैं स्वभाव विषैंही तिष्ठै हैं बहुरि कान्तिकरि इनि समान और नाहीं ॥ ३ ॥

---

१ मर्यादारहित।

कथयन्ति कषायमुक्तलक्ष्मीं
परया शान्ततया भवांतकानाम् ।
प्रणमामि विशुद्धये जिनानां
प्रतिरूपाण्यभिरूपमूर्त्तिमंति ॥ ४ ॥

याका अर्थ—जिनेश्वरके प्रतिबिंब कसे है ? जैसा जिनेश्वरका रूपहै तैसेही मूर्तिमान है सो जिनि जीवनिकै ससारका अत आया है तिनिकू उत्कृष्ट शातपना करि कषायनिका अभावरूप जो आत्माकी सपदा ताहि दिखावैहै ऐसेहै तिनिकू मै नमस्कार करूं हू. भावनिकी विशुद्धताकै अर्थि ॥ ४ ॥

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं
सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन ।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति-
र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ॥

याका अर्थ—जो मैं जिनेश्वरका बिंबनिकी भक्ति तथा सिद्धभक्तिकरि पापमार्गका रोकनहारा पुण्य पाया है ताकरि मेरै जन्म जन्मविषैं जिनधर्मविषैंही दृढ भक्ति होहु, यहु फल वाछूं हू अन्य कछू नाहीं चाहू हू ॥

ऐसैं तेरमां स्थल है ॥ १३ ॥

आगैं जहा जहा चैत्यकहिये जिनेश्वरकी प्रतिमाहै तिनिकूं स्तवै है—

श्लोक—अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसंपदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धिविशुद्धये ॥ १ ॥

याका अर्थ—अरहतनिकी प्रतिमानिका मैं मेरी बुद्धिसारूं कर्ममल पखालनिकै अर्थि स्तवन करू हू, कैसे हैं अरहत—सर्व पदार्थ-

निके ज्ञात है अथवा सकल चरित्र जिनिके पाइये हैं, बहुरि दर्शन ज्ञान है सपदा जिनिकै ॥ १ ॥

श्लोक—श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयं भासुरमूर्त्तयः ।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ॥२॥

याका अर्थ—शोभायमान भवनवासीनिके भवननिविर्षे प्रतिमा हैं ते वदे संते मेरै मोक्षमार्ग करौ. कैसी है—स्वयमेव देदीप्यमान है मूर्ति जिनिकी ॥ २ ॥

श्लोक—यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च ।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ॥३॥

याका अर्थ—या लोकविषैं जेते अकृत्रिम कृत्रिम जिनबिंब हैं तिनि सर्वनिकूं मे सपदाकै अर्थि वंदूं हूं, कैसे है प्रचुर हैं बहुत हैं ॥३॥

श्लोक—ये व्यंतरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः ।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः संतु नो दोषशान्तये ॥४॥

याका अर्थ—जे व्यन्तरनिके विमाननिविषैं जिनेश्वरकी प्रतिमाके मदिर सासते असख्याते हैं ते हमारे दोषनिकी शान्तिकै अर्थि होहु ॥४॥

श्लोक—ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसंपदः ।
गृहाः स्वयंभुवः संति विमानेषु नमामि तान् ॥५॥

याका अर्थ—अत्र ज्योतिषी देवनिके विमाननिविषैं सासते भगवानके चैत्यालय है तिनहि सपदाकै अर्थि नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं—अद्भुत है संपदा जिनिमैं ॥ ५ ॥

श्लोक—वन्दे सुरकिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमैरेव सेवंते तदर्चालब्धिसिद्धये ॥ ६ ॥

याका अर्थ—वैमानिक देवनिके मुकुटनिकी मणिकी दीप्तिकरि स्नपन जिनिका होत है, तिस अभिषेककूं जे प्रतिमा अपने चरणनि-करि सेवै है ग्रहण करै है तिनि प्रतिमानिकूं मुक्तिकी प्राप्तिके अर्थि मैं वन्दूहूं ॥ ६ ॥

श्लोक—इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम ।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रवनिरोधिनी ॥ ७ ॥

याका अर्थ—ऐसै अरहंतनिके बिंबनिकी स्तुति मेरै सर्व कर्मके आस्रवकी रोकनहारी होहु, कैसे है अरहत—स्तुतीके मार्ग करि अतीत जो लक्ष्मी ताहि धारण किये है। भावार्थः—जिनिकी लक्ष्मी स्तुतिके वर्ण-नमैं न आवै है ॥ ७ ॥

ऐसै चौदमा स्थल है ॥ १४ ॥

आगै अरहंत भगवतकूं तीर्थकी उपमादे स्तुति करै है—

स्कन्दछन्द ।

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरितम् ।
प्रक्षालनैककारणमतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ॥ १ ॥
लोकालोकसुतत्वप्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान- ।
प्रत्ययवहत्प्रवाहं व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम् ॥ २ ॥
शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्- ।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं नानागुणसमितिगुप्तसिकतासुभगम् ॥३॥
क्षान्त्यावर्त्तसहस्रं सर्वदयाविकचकुसुमविलसल्लतिकम् ।
दुःसहपरीषहाख्यद्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ॥ ४ ॥
व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषादिदोषशैवलरहितम् ।
अत्यस्तमोहकर्दममतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ॥ ५ ॥

ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोपविविधविहगध्यानम् ।
विविधतपोनिधिपुलिनं साम्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणम् ॥६॥
गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः ।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ॥७॥
अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरम् ।
व्यवहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावभावगंभीरम् ॥ ८ ॥

इनिका अर्थ—अरहत भगवनका मार्ग उत्तम तीर्थ है सो गणधर चक्रवर्ती इन्द्र आदि बडे पुरुष घणेनिकरि पापरूप मलधोवनेके अर्थि भक्ति तें स्नान करने योग्य है, सो स्नान करनेकू प्रवर्त्त्या जो मैं ता मेरैभी दुर्निवार समस्त पापनिकू दूरि करौ, कैसा है तीर्थ—तीर्थयात्री जो तीन जगतके भव्यप्राणी तिनिके पापके पखालनेकू अद्वितीय कारण है, बहुरि लौकिक प्रसिद्ध तीर्थनिकू उलवि वर्त्ते है, बहुरि लोक अलोकका यथार्थ स्वरूपकू भिन्न जाननेकू समर्थ जो दिव्य केवलज्ञान सोही वहता है निरतर प्रवाह जामैं, बहुरि व्रत शील कहिये मूलगुण उत्तरगुण तेही हैं निर्मल बडे दोय तट जाके, बहुरि शुक्लध्यान तेही भये निश्चल तिष्ठे सोहने राजहंस तिनिकरि सोहै है, बहुरि निरन्तर होते जे स्वाध्यायपाठ तेही है सुन्दर शब्द जहा, बहुरि अनेक गुण समिति गुप्ति सोही भई सिकता ताकरि सुन्दर है, बहुरि क्षमारूपी आवर्त्तके हैं सहस्र जामैं, बहुरि सर्व प्राणी निकी दया सोही फूलनिकरि सोहती वेली तासहित है, बहुरि दुर्धर परीपहनामा जे चचल फैलती तरग तिनिकरि भगुर है सघात जहा, बहुरि नष्ट भया है कषायरूपी झाग जहा, बहुरि रागद्वेषादि सेवालतें रहित है, बहुरि नष्ट भया है मोहरूपी कीच जहा, बहुरि दूरि गये हैं मरणरूप मकरनिके समूह जातै, बहुरि बडे बडे ऋषीश्वरनि करि करी जे स्तुति तिनिका

उत्पन्न भया जो सुन्दर शब्द सो ही है अनेक पखीनिका बोलना जहा, बहुरि अनेक प्रकारके तपके निधान जे मुनिराज तेहीं हैं पुल जहा जिनिके आश्रय जात्री हैं, बहुरि आस्रवका संवर सहित निर्जरा सोहीं हैं नीझरणें जहा, बहुरि परमपवित्र है, बहुरि काहूकरि जीत्या न जाय ऐसा जो स्वभावभाव ताकरि गंभीर है ऊडा है। ऐसा उत्तम तीर्थ ही भव्यनिकू तारै है, अन्य कहनेके तीर्थ हैं; अंतरात्माका पापरूप मल अन्यतीर्थनितैं धोया न जाय है ॥ १-८ ॥

ऐसैं पदरमा स्थल है ॥ १५ ॥

आगैं जिनेन्द्रके रूपकी स्तुति करै है;—

पृथ्वीछंद।

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवन्हेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः ।
विपादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यंतिकीम् ॥ १ ॥

याका अर्थ—हे जिनेन्द्र! तुमारा मुख है सो तुमारी हृदयकी अत्यंत शुद्धताकू कहै है, कैसा है—क्रोधरूपी अग्निके समस्त जीतनें तैं रक्ततारहित है नेत्र जामैं, बहुरि विकारके उदयके अभाव तैं कटाक्षरूपी बाणनिके छोडनेंकरि रहित है, बहुरि विषाद तथा मदकी हानि तैं निरन्तर प्रसन्न है ॥ १ ॥

निराभरणभासुर विगतरागवेगोदयात्
निरम्बरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः ।
निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ॥ २ ॥

मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनं
नवाम्बुरुहचन्दनप्रतिमदिव्यगंधोदयम्।
रवीन्दुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरमहस्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम्॥ ३॥
हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते॥ ४॥
तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुंबनीयचरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं
जगत्सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः॥ ५॥

इनि च्यारि काव्यनिका अर्थ—हे भगवन्' सो यहु तुमारा रूप सकल जगतकू पवित्र करो, कैसा है—अन्यमतके गुरुनिका जो सदोष रूप सोही भया रात्रिका उदय ताकरि आंधा कीया है, सो तुमारा रूप कैसा है—जाकू यह जन हितके नाश करनहारे जे राग-द्वेष मोहादिक तिनिकरि कलंकसहित मलिन मन सोहू सन्मुख होय देखिकरि कलंकत रहित होत है, अर जे सदाही सन्मुख होय सर्वांग देखने है तिनिकै तौ शरदऋतुका निर्मल चन्द्रमाके बिंबका उदयवत् आल्हादित करनहारा देखिये है, कैसा है यहु रूप—दूरिभया जो रागका उदय तातैं बिनाही आभूषण देदीप्यमान है, बहुरि कैसा है—स्वभावहीतैं यथा जातरूप निर्दोष है तातैं बिना वस्त्रही मनोहर है, बहुरि दूरि भई जो हिंसनयोग्य तथा हिंसाकी परिपाटी तातै बिनाही

आयुध भयरहित है, वहुरि अनेक प्रकार जे वेदना क्षुधा आदि रोग तिनिका नाशतैं विना भोजन तृप्तिसहित है। भावार्थ--आनदेवकी लोक वस्त्र आभूषण शस्त्र आदिकरि शोभा वणाय देखि खुसी मानै हैं, अर तुमारा रूप तिनि विनाही आनन्द उपजावै है, आनदेव क्षुधादिकरि पीडित हैं तिनिकूं मूढलोक मास आदिका वलि दे तृप्त करै है, तुम सर्व वेदनातैं रहित हो तातै स्वयमेव तृप्त हो। वहुरि कैसा है--नाही वधैं हैं नख केश जाकै, वहुरि गया है रजमलका स्पर्श जामैं, वहुरि नवीन कमल तथा चन्दन सारिखा है सुदर सुगधका उदय जामै, वहुरि सूर्य चंद्रमा वज्र आदि जे प्रशस्त घणे जे चिह्न तिनिकरि शोभायमान है, वहुरि हजारनि सूर्य सारिखा देदीप्यमान है तौऊ नेत्रनिकूं प्यारा है ॥

ऐसै सोलमा स्थल है ॥ १६ ॥

आगै समवसरणकी महिमापूर्वक श्रीचन्द्रप्रभस्वामीकी स्तुति करै है;—

स्रग्धराछंद।

मानस्तंभाःसरांसि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी
प्राकारो नाट्यशालाद्वितयमुपवनं वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः
शालः कल्पद्रुमाणामुपरि वृतिवनं स्तूपहर्म्यावली च,
प्राकारः स्फाटिकोऽन्तर्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः ॥

याका अर्थ—ऐसे समवसरणविषै स्वयभू कहिये भगवान् सो विराजमान है, जहा च्यारि कोट है तामै दूसरे कोटके च्यार दिशा च्यार दरवाजेनिकै निकट च्यार उचे मानस्तभ है तिनिकू देखे मानी जीवनिका मान नसि जाय है, वहुरि तिनिके निकट सर है बावडी हैं ताकै आगै निर्मल जलकी भरी खाई है ताकै निकट

फूलवाडी है ताकै आगै कोट है, सुवर्णमयी ताके, दरवाजेनिकी दोऊ ओर नृत्यशाला है तहा देवागना नृत्य करै है, ताकै निकट सुंदर वाग है तामै अशोक चपा सप्तच्छद आम्र ये वृक्ष हैं, ताकै आगै वेदी कहिये विना कागुरा कोट सारिखी भींति है, ताकै निकट एकसौ आठ एकसौ आठ तो वडी ध्वजा है, ताकै विचि विचि एकसौ आठ एकसौ आठ छोटी ध्वजा है, ताकै आगै रूपामयी कोट है ताकै आगै वेदीसहित कल्पवृक्षनिका वन है, ताकै आगै रत्नमयी स्तूप ताकै आगै महल-निकी पक्ति है तहा देव रमै है, ताकै आगै स्फटिकमणिमयी कोट है, ताके मध्य मनुष्य देव मुनिनिकी वारह सभा है ताकै मध्य तीन पीठ है ताविषै वेदीपर भगवान् स्वयभू विराजै हैं ॥

श्लोक—नताखण्डलमौलीनां यत्पादनखमण्डलम् ।
खण्डेन्दुशेखरीभूतं नमस्तस्मै स्वयंभुवे ॥

याका अर्थ—तिस स्वयभू भगवान्कै अर्थि हमारा नमस्कार होहु जाके चरणनिके नख सोही भया चन्द्रमाका मडल सो नमे जे इन्द्र तिनिके मस्तकनिकै विषै मुकुटवत् होता भया । भावार्थ—जाकूं इन्द्रहू नमस्कार करै हैं ताकू हमारा नमस्कार पहुचो ।

— कोईक अन्यमती स्वयभू रुद्रकू कहै है ताके भालविषैं चन्द्रमाका चिह्न कहै हैं सो साचा स्वयभू यह भगवान् है जाकू इन्द्र नमैं हैं सो प्रभुके चरणके नखनिकैं द्युतिका मडल इन्द्रनिकैं मुकुटवत् होय हैं ॥

आगै चन्द्रप्रभस्वामीकी पचकाव्यमै स्तुति है—

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं
चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।

वंद्येऽभिवंद्यं महतामृषीन्द्रं
जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥ १ ॥

यस्यांगलक्ष्मीपरिवेषभिन्नम् ।
तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च
ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥ २ ॥

स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता
वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगंडा
गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥ ३ ॥

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः
पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः ।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः
समेतदुःखक्षयशासनश्च ॥ ४ ॥

स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां
विपन्नदोषाभ्रकलंकलेपः ।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः
पूयात्पवित्रो भगवान् मनो मे ॥ ५ ॥

इनिका अर्थ—मैं सामायिकका कर्ता हूं सो चन्द्रप्रभस्वामी आठमा तीर्थंकर परमदेव ताहि वंदूहूं । कैसा है—चद्रमाकी किरणसारिखा गौर-वर्ण है, भावार्थ—बाह्य तौ श्वेतवर्ण शरीर है अतरग रागादिविकाररहित शुद्ध आत्मारूप उज्वल है, बहुरि जगतविषैं मानू दूजा चद्रमाही, भावार्थ गत विषैं आल्हाद उपजावै है, बहुरि कान्त है, भावार्थ—जैसैं स्त्रीकै

भर्त्तार कात है तैसै जगतके पति है अथवा कान्त कहिये सुन्दर जगतकू प्रिय है, वहुरि महत पुरुष इन्द्र चक्रवर्ती आदिकरि वदिवेयोग्य है, वहुरि कैसे हैं—ऋषि जे ऋद्धिधारी मुनि गणधर आदिक तिनिविषैं चंद्रवत् है, वहुरि जिन है कर्म शत्रुकू जीत्या है; वहुरि स्वान्त कहिये अन्तरङ्ग मन ताविषैं तिष्ठता जो कषायरूप शत्रु ताकू जीत्या है, भावार्थ-द्रव्यकर्म भावकर्मकू जीत्या हैं याही तैं जिन नाम है। वहुरि कैसा है—जाके अगकी लक्ष्मी कहिये प्रभा ताका परिवेष कहिये मडल ताकरि भिन्न कहिये भेद्या जो अधकार सो जैसै सूर्यके किरणकरि अधकार दूर होये है तैसै तो बाह्यका अधकार दूरिभया है। वहुरि ध्यानरूप दीपकके अतिशयकरि अतरग मन सवधी अज्ञानरूप अधकार सो दूरि भया है, भावार्थ—ध्यानके प्रभाव करि केवलज्ञान उपज्या है ताकरि समस्त पदार्थ प्रकट प्रतिभासै हैं; वहुरि कैसा है—जाके वचनरूप जो सिंहका गर्जन ताकरि अन्यवादी रूप हस्ती त जैसै केसरी सिंहके गाजनेंकरि वनके हस्ती मदरहित होय तैसै मदरहित भयेहै, कैसे हैं अन्यवादी—अपनी जो पक्ष ताका दृढपनाकरि मदतै गर्वित होय रहे है, वहुरि कैसे है वनहस्ती--मदकरि आर्द्रित है गडस्थल कपोल जिनिके। वहुरि कैसा है चद्रप्रभस्वामी--सर्व लोकविषै परमेष्ठीपनाका जो पद ताकूं पाया है, काहेतै ? जातै अद्भुत कर्म कहिये तीर्थकरनाम प्रकृति ताका है तेज कहिये प्रताप जिनिकै, वहुरि अनत है धाम कहिये प्रकाश जाका ऐसा अविनाशी विश्व कहिये समस्त देखनेवाला केवल ज्ञानरूप है नेत्र जाकै, वहुरि कैसा है--समत कहिये सर्व प्रकारक जे ससारसंवधी दुःख ताका क्षय जातैं होय ऐसा है शासन कहिये मत आज्ञा उपदेश जाका ऐसा है। सो चन्द्रप्रभ भगवान मेरे मनकू पवित्र करौ, कैसा है—भव्यजीवरूपी जे कुमुद तिनिकू चन्द्रमासमान है, भावार्थ-- भव्य

जीवानिके मनकूं आल्हाद उपजावैं है, बहुरि कैसा है--विगाट्या है दोषरूप वादलेका कल्क लेप जानें जैसैं चद्रमा रात्रिविषैं वादलेसवधी अधकार दूरि करै है तैसैं ॥

ऐसैं सत्रहमा स्थल है ॥ १७ ॥

आगैं चौवीस तीर्थंकरनिकी जयमाल है;—

वत्ताणुट्ठाणे जणुधणदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु ।
तव चरणविहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥

याका अर्थ—हे भगवान ! तुम कैसे हो तुमारा वर्त्तानुष्टान कहिये गर्भतैं लगाय राजपर्यन्त तामैं तुमनैं लोकनिकूं धनका दान दीया रत्न वरपे तथा राजानिकूं पोपे, बहुरि तुमारा तपश्चरणविधानकैं विषैं तथा केवलज्ञानकै विषै तुम परमपद कहिये शुद्ध आत्मपदकूं प्राप्त भये, पीछैं निर्वाणकूं प्राप्त होय परमात्मा भये, ऐसे हो।

जय रिसह रिसीसरणमियपाय ।

याका अर्थ—हे ऋषभ ! तुम जयवत होहु, कैसे हो तुम--ऋपीश्वर कहिये ऋद्धिधारी मुनि गणधरादिक तिनिकरि नमित हैं चरण तुमारा ।

जय अजिय जियंगयरोसराय ॥

याका अर्थ—हे अजित ! तुम जयवंत होहु, कैसेहो तुम जीते हैं राग द्वेप जिनुनैं, ऐसे हो ।

जय संभव संभवकयविओय ।

याका अर्थ—हे सभव ! तुम जयवंत होहु, कैसेहो तुम--संभव कहिये संसारमैं जन्म ताका कियाहै वियोग जिनूनैं, ऐसे हो ।

जय अहिणंदण णंदियपओय ॥

याका अर्थ—हे अभिनन्दन ! तुम जयवत होहु, कैसे हो तुम नदित कहिये वधायाहै प्रयोग कहिये ध्यानका प्रयोग जिनूनें ।

जय सुमइ सुमयसम्मयपयास ।

याका अर्थ—हे सुमति ! तुम जयवत होहु, कैसेहो तुम—सम्यग् ज्ञानकरि समीचीन मत जो स्याद्वाद निर्बाधमार्ग ताका है प्रकाश जातैं ।

जय पउमप्पह पउमाणिवास

याका अर्थ—हे पद्मप्रभ ! तुम जयवत होहु, कैसेहो तुम पद्मा कहिये लक्ष्मी ताके निवास हो, बाह्य अभ्यतर लक्ष्मी तुमविषैं वसै है ।

जय जयहि सुपास सुपासगत्त ।

याका अर्थ—हे सुपार्श्व ! तुम जयवंत होहु जयवत होहु इहा 'जय' पद दोय वार हैं, कैसे हौ तुम—निश्चयकरि भले पार्श्वनिकरि सहित हैं शरीर तुमारा । इहा ऐसाभी अर्थ जानना जो जिनिका निकट रहनेवालेनिका रक्षा करनेवाला जिनिका देहहै तातैं सुपार्श्व देह है ।

जय चंदपह चंदाहवत्त ॥

याका अर्थ—हे चन्द्रप्रभ ! तुम जयवत होहु, कैसे हौ तुम चन्द्रमाकी आभाकू धरै है मुख जिनिका, देखनेंवालिकैं आनद उपजावै है ।

जय पुप्फदंत दंतंतरंग ।

याका अर्थ—हे पुष्पदन्त ! तुम जयवत होहु, कैसे हौ तुम दत्त कहिये दम्य है अन्तरग कहिये मन जिनूनैं ।

जय सीयल सीयलवयणभंग ॥

याका अर्थ—हे शीतल ! तुम जयवंत होहु, कैसे हौ तुम शीतल हैं वचनानिके भंग जिनिके। भावार्थ—स्याद्वाद सम भंगरूप वचनके सुननेका फल वीतरागता है।

जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज।

याका अर्थ—हे श्रेय ! तुम जयवंत होहु. कैसे हौ तुम—श्रेय कहिये कल्याणरूप जे किरण तिनिका समूह तिनिकू धारैं सूर्यसमान हौ, तुमारै पंच कल्याण आदि अनेक कल्याण पाइये हैं।

जय वासुपुज्ज पुज्जाण पुज्ज ॥

याका अर्थ—हे वासुपूज्य ! तुम जयवंत होहु, कैसे हौ तुम—पूज्यनिकै विषैं पूज्य हौ, लोकमें इंद्रादिक पूज्य हैं मोक्षमें गणधरादिक पूज्य हैं तिनिमैं तुम सर्वोत्कृष्ट पूज्य हौ, तुमकू ते भी पूजैं हैं॥

जय विमल विमलगुणसेणिठाण।

याका अर्थ—हे विमल ! तुम जयवंत होहु, कैसेहो तुम विमल कहिये निर्मल हो निर्मल गुणनिकी पंक्तिके स्थान हो अथवा गुणश्रेणी निर्जराके स्थानक हो।

जय जय हि अणंताणंतणाण ॥

याका अर्थ—हे अनंत ! तुम जयवंत होहु तुम जयवंत होहु, इहां 'जय' शब्द दोयवार है, कैसे हो तुम—तुमारै अनंत ज्ञान है॥

जय धम्म धम्मतित्थयरसंत।

याका अर्थ—हे धर्म ! तुम जयवंत होहु, कैसे हो तुम धर्मरूप तीर्थ ताके करनहारे वडे महंत पुरुष हौ।

जय संति संतिविहियायवत्त ॥

याका अर्थ—हे शांति! तुम जयवंत होहु, कैसे हो तुम-शांतिकी विधिकूं प्राप्त करनेवाला है मुख तुमारा ऐसे हो अथवा शांतिकी विधि ही है आतपत्र कहिये छत्र जाकै, ऐसा भी अर्थ है॥

जय कुंथु कुंथुपहुअंगिसदय।

याका अर्थ—हे कुंथु! तुम जयवंत होहु, कैसे हो तुम कुंथु, आदि जे सर्व प्राणी तिनिविषै दयासहित हो।

जय अर अरमाहरविहियसमय॥

याका अर्थ—हे अर! तुम जयवंत होहु, कैसे हो तुम अरमा कहिये दरिद्रताका हरनेवाला रच्या है समय कहिये मत जिनिनैं ऐसेहो। भावार्थ—संसाररूप दरिद्रकूं हरि मोक्षलक्ष्मी करै ऐसा तुमारा मत है॥

जय मल्लि मल्लियादामगंध।

याका अर्थ—हे मल्लि! तुम जयवंत होहु, कैसे हो तुम मल्लिका कहिये मालती ताकी जो दाम कहिये माला ता सारिखा है गंध तुमारा। भावार्थ—जिनका शरीर अतिसुगंध है तथा जिनिकी वचनरूप वासना सर्वजगतकूं प्रिय है।

जय मणिसुव्वय सुव्वयणिवंध॥

याका अर्थ—हे मुनिसुव्रत! तुम जयवंत होहु, कैसे हो तुम सुव्रत कहिये भला चारित्र ताका है प्रवंध जिनिकै।

जय णमि णमियामरणियरसामि।

याका अर्थ—हे नमि! तुम जयवंत होहु, कैसे हो तुम नमाये हैं अमर कहिये देव तिनिके समूहके स्वामी इंद्र जिनिनै। भावार्थ—इंद्र आय जिनिकै पाय परैं है।

जय णेमिधम्मरहचक्कणेमि ॥

याका अर्थ—हे नेमि ! तुम जयवंत होहु, कैसे हौ तुम धर्मरूप रथके चलावने हारे नेमि कहिये पूठे सारिखे हौ ॥

जय पास पासछिंदणकिवाण ।

याका अर्थ—हे पार्श्व ! तुम जयवंत होहु, कैसे हौ तुम पासके छेदनेंकू कृपाण कहिये खड्ग तथा छूरि सारिखे हौ ।

जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ॥

याका अर्थ—हे वर्द्धमान ! तुम जयवंत होहु, कैसे हौ यशकरि वर्द्धमान हौ । भावार्थ—श्रीवर्द्धमानस्वामी अंतिम तीर्थंकर है तिनिका यश अबताईं प्रवर्तै है ॥

घत्ता ।

इय जाणिय णामहिं दुरियविरामहिं परहिं णमियसुरावलिहिं ।
अणिहणहिं अणाइहिं समयकुवाइहिं पणविवि अरहंतावलिहिं ॥

याका अर्थ—एते अरहंतनिकी मालाके नामनिकरि तिनिकूं जानि नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं नाम—दुरित कहिये पाप ताका है अंत जिनि करि, बहुरि पर कहिये उत्कृष्ट है अथवा 'पर' शब्द अन्यका वाचकभी है यातैं पर कहिये अतीत अनागत चौवीसीकूं भी नमस्कार जानना ऐसैं अनादिनिधनभी विशेषण है, बहुरि नमाई है देवनिकी पंक्ति जिनिनैं, बहुरि अविनाशी हैं, बहुरि अनादिके है, ये चउवीस तीर्थंकर संख्याकरि एक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी कालविर्षे एतेही होयहैं तातैं संख्याकरि अनादि, विशेषण संभवै है, बहुरि निराकरण कियेहैं कुवादि ज्या ऐसे हैं ॥

इहा ऐसा जानना जो ए चौईस तीर्थंकरनिके नाम विशेषणसहित कहे तिनिकूं वंदना करी सो रूढी करितौ न्यारे न्यारे नाम हैं ही, अर सार्थक नयकरियें तत्र एक एक नयके चौईसूही विशेषणसहित नाम संभवें हैं, स्याद्वादमतमैं विरोध नाही है। ऐसैं चौईस तीर्थंकरनिकी जयमाल पढे।

यह अठारमा स्थल है॥ १८॥

आगैं चैत्य चैत्यालयनिकी भक्ति है,—

काव्य—वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु
नन्दीश्वरे यानि च मन्दिरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके
सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम्॥ १॥

याका अर्थ—मैं सामायिकका करनहारा हूं सो जिनप्रधानके सर्वही चैत्यायतन कहिये चैत्यालय हैं तिनिकूं वंदूं हूं, ते कहा कहा है—वर्ष कहिये क्षेत्रनिविषैं, बहुरि वर्षान्तर कहिये कुलाचलनिविषैं. बहुरि नन्दीश्वर द्वीपविषैं, बहुरि पंच मेरुनिविषैं जे ते जिनभगवानके चैत्यमंदिर हैं तिनिकूं वंदूं हूं"

अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानाम्।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि॥२॥

याका अर्थ—मैं सामायिकका कर्त्ता हूं सो जिनवरके चैत्यालय हैं तिनिकूं भाव तैं स्मरण करूं हूं, ते कहा कहा हैं—कृत्रिम तथा अकृत्रिम या पृथ्वीतलमैं हैं तथा व्यंतरनिके निवासनिमैं तथा भवनवासीनिके निवा-

सनिमै तथा दिव्य वैमानिक जे कल्पवासी तिनिके निवासनिमैं, वहुरि इस मध्यलोकमै मनुष्यनिके किये है, वहुरि देवराज कहिये इद्र तथा देव अर राजा कहिये मनुष्यनिका राजा तिनिकरि पूजनीक हैं; ऐसैं सर्वकू यादि करि वदू हू ॥

शार्दूल विक्रीडितछंद ।

जंबूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवा–
श्चन्द्रांभोजशिखंडिकण्ठकनकप्रावृड्घनाभा जिनाः ।
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना
भूतानागतवर्त्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥ ३ ॥

याका अर्थ—सामायिकका कर्त्ता कहै है–जो तिनि जिन कहिये तीर्थकरनिकै अर्थि मेरा नमस्कार होहु, कैसे है ते–जवूद्वीप धातकीखड-द्वीप पुष्करार्द्धद्वीप इति अढाई द्वीपका पृथ्वीका क्षेत्र है ताविषै अतीतकाल अनागतकाल वर्त्तमानकालविषै जे भये हैं; वहुरि कैसे है–चद्रमा, अभोज कहिये रक्तकमल, शिखडिकठ कहिये मोरका कठ, सुवर्ण, अर वर्षा कालका मेघ तिनिकी है आभा कहिये शरीरका वर्ण जिनिका वहुरि सम्यग्दशन ज्ञान चारित्र लक्षणकू धारैं है, वहुरि दग्ध कीये है अष्टकर्म जिनिनै ऐसे है । भावार्थ–इहां जिनकी प्रतिमा राचिये है ते तीर्थंकर है तिनिकू विचारि नमस्कार किया है ते पचवर्णके शरीरके धारक है, सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्ररूप मोक्ष-मार्गमै प्रवर्ति मोक्षमार्ग प्रवर्ताय आप अष्टकर्मनिका नाश करि निर्वा-णकू प्राप्त भये हैं, तिनिकी पच वर्णकी प्रतिमा स्थापि पूजिये हैं, तिनिकू तीन काल विषैं अढाईद्वीपमैं भये तिनि सर्वहीकू नमस्कार किया है ॥ ३ ॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मानुषांके ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥४॥

याका अर्थ—मैं सामायिकका कर्ता जे एता जायगा जिनेश्वर देवके चैत्य कहिये प्रतिमा हैं तिनि सर्वनिकूं वदूहूं तिनिके सन्मुख होय स्तुति करूंहूं, ते कहा कहा है—श्रीमत् कहिये सोभायमान जे पचमेरु है तिनिविषैं हैं, वहुरि कुलाचल पर्वतनिविषै हैं, वहुरि रूपाचल जे विजयार्द्ध पर्वत तिनिविषै हैं, वहुरि शाल्मली अर जवू इनि वृक्ष निविषैं हैं, वहुरि वक्षारपर्वतनि विषै वहुरि केई जायगा चैत्यवृक्ष है तिनिविषै हैं। वहुरि रतिकर पर्वत नदीश्वरके हैं तिनिविषैं हैं, वहुरि रुचिकगिरि विषै हैं, वहुरि कुडलगिरि विषैं है, वहुरि मानुषोत्तर पर्वत विषै हैं, वहुरि इष्वाकार पर्वतनि विषैं हैं, वहुरि अजनगिरि नदीश्वरकेनिविषैं है वहुरि दधिमुख पर्वत नदीश्वरके हैं तिनिके शिखर विषैं हैं, वहुरि व्यतरलोक विषै है, वहुरि ज्योतिषी देवनिके लोकविषै है, वहुरि भवनवासीनिके महीतल विषै हैं। ऐसैं जेते है सर्वविषैं तिनि सर्वहीकूं वदूहूं स्तवूं हूं ॥ ४ ॥

द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ
द्वौ वंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ ।
शेषाः षोडश जन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभा-
स्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ॥५॥

याका अर्थ—सामायिकका कर्त्ता कहै है—जे तीर्थंकर सम्यग्ज्ञान जो केवलज्ञान तिसरूप सूर्य सारिखे हैं, देवनिकरि नमनें

योग्य है ते हमकू सिद्धि कहिये सर्व प्रयोजनकी सिद्धिरूप जो मोक्ष ताहि द्यो, कैसे है--दोय तौ कुंदके पुष्प तथा चंद्रमा तथा पाला तथा स्फटिक मोतिनका हार तिन सारिखे श्वेतवर्ण है, बहुरि दोय इंद्रनीलमणिकी प्रभासारिखे है, बहुरि दोय बंधूक कहिये भिझन्याका फूल तिन समान प्रभाकू धरै है. बहुरि दोय प्रियंगुकी प्रभा सारिखे है बहुरि बाकी सोल्ह ताये सोनासारिखी प्रभाकू धरै है. कैसे है--जन्ममरणकरि रहितहैं बहुरि कैसे है जिनवृषभ कहिये तीर्थंकर है: यह विशेषण द्विवचनरूप हैं सो आठकै लगावणा, सोल्हका विशेषण जुदा है हीं। भावार्थ--वर्त्तमान चौईसीके शरीरकी प्रभाका वर्णन करि प्रार्थना करी है। तहां चन्द्रप्रभ पुष्पदंत तौ श्वेतवर्ण शरीर है. बहुरि पार्श्व सुपार्श्व ये दोऊ नीलवर्ण हैं, बहुरि पद्मप्रभ वासुपूज्य ये दोऊ रक्तवर्ण है. बहुरि मुनिसुव्रतनाथ नेमिनाथ ये दोऊ श्यामवर्ण है, बहरि सोल्ह सुवर्ण वर्ण है ॥ ५ ॥

ऐसैं उगणीसमा स्थल है ॥१९॥

आगे चैत्यभक्ति का प्राकृतपाठहै —

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ, अहलोय तिरियलोय उड्ढयलोयम्मि किट्टमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोयेसु भवणव्यंतरजो इसियकप्पवासीयत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेहिं गंधेहि दिव्वेहिं पुप्फेहिं दिव्वेहिं धूवेहिं दिव्वेहिं चुण्णेहिं दिव्वेहिं वासेहिं दिव्वेहि ण्हाणेहिं णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि पूजामि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खउ कम्मक्खउ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झ ॥

याका अर्थ—भते कहिये हे भगवन् ! मैं सामायिकका कर्त्ता हूं सो चैत्यभक्तिकूं इच्छू हू, तिससवधी कार्योत्सर्ग कीया, ताकी आलोचन करू हू । इस अधोलोकमैं तिर्यगलोकमैं उर्ध्वलोकमै कृत्रिम अकृत्रिम जे जिनके चैत्य प्रतिमा है तिनि सर्वनिकू तीन लोकविषै भवनवासी वा व्यतर ज्योतिषी कल्पवासी ऐसे च्यारि प्रकारके देवपरिवारसहित दिव्यगधकरि दिव्यपुष्पनिकरि दिव्य धूपनिकरि दिव्य चूरणकरि दिव्य वासकरि दिव्य अभिषेककरि नित्यकाल अर्चै है पूजै है वदै है नमस्कार करैं हैं तिनि चैत्यनिकू मैंभी इहा वैठा ते तहा तिष्टै हैं तिनिकू नित्यकाल अर्चू हू पूजू हू वदू हू नमस्कार करू हू, तिनिकी पूजा वदनतैं मेरा दुःखका क्षय होहु, वोधिका लाभ होहु, सुगतिविषै गमन होहु, समाधिसहित मरण होहु, तिनिके गुणानिकी प्राप्ति होहु ॥

ऐसैं चैत्यभक्तिका वीसवा अधिकार है ॥ २० ॥

आगैं पचगुरुभक्ति करै है;—

अथ पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचायानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावदनास्तवसमेतं श्रीपंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहंम् । णमो अरहंताणं इत्यादि, ततः थोस्सामि इत्यादि पठनीयम् ।

अर्थ—अथ कहिये अैठा आगैं प्रभातसवधी देववदनाविषै पूर्वाचार्यनिके अनुक्रमकरि सकलकर्मके क्षय होनेकै अर्थि भावपूजा, वदना स्तवन सहित श्रीपचगुरुभक्तिसवधी कायोत्सर्ग मै करू हू । ऐसे पढि पीछैं "णमो अरहताण" इत्यादि पहलै कह्या था तिस विधानसू जाप्य करै, पीछैं "थोस्सामि" इत्यादि पहलैं कह्या था सो पाठ पढै ॥

श्लोक—प्रतिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् सुमातृभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून् योगांगैश्चाष्टभिः स्तुवे ॥१॥

याका अर्थ—जिन जे अरहत तीर्थकर तिनिकूं तौ आठ प्रतिहार्यकरि स्तवूं हूं, बहुरि अष्ट गुणनिकरि सिद्धनिकूं स्तवू हूं, बहुरि पच समिति तीन गुप्ति ए अष्ट प्रवचनमाता है तिनेकरि आचार्यनिकूं स्तवू हूं, बहुरि अष्टागविनयकरि उपाध्यायकू स्तवू हूं, बहुरि यम नियमादिक अष्ट योगके अगनिकरि साधुनिकूं स्तवू हूं। ऐसैं पचपरमेष्ठीका स्तवन करै, इनिकी स्तुति पढै ॥ १ ॥

सो कहै है;

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया
पंचकल्लाणसोक्खावलीपत्तया ।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं
ते जिणा दिंतु अंम्हं[1] वरं मंगलं ॥ १ ॥

याका अर्थ—ते जिन अरहत हमकू वर कहिये श्रेष्ठ मगल द्यो कैसे हैं ते—मनुष्य नागेन्द्र सुर इनि तीन लोकके प्राणीनिकरि धेर हैं तीन छत्र जिनिकै, भावार्थ—अपने स्वामी मानै है, प्रभु ए तीन लोकके पति है ऐसैं जिनके तीन छत्र हैं ते जनावैं है बहुरि गर्भजन्म तप ज्ञान निर्वाण ए पाच कल्याण तिनिसबधी जो सुखकी आवली ताकू प्राप्त भये हैं, भावार्थ—पाचूही कल्याणकमै इद्रादिक आय बडा उत्सव करैं हैं, बहुरि दर्शन ज्ञान अरु ध्यान कहिये सुख अरवीर्य ए अनत जिनिकै पाइये है, ऐसे हैं ॥ १ ॥

---

१ अस्मभ्यम्

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइदड्ढयं
जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं ।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥ २ ॥

याका अर्थ—ते सिद्ध परमेष्टी मोकूं वर श्रेष्ठ ज्ञान द्यो, कैसे है ते जिन–ध्यानरूप अग्नि बाणकरि वडे जोर तै जन्म जरा मरण ए तीन नगर दग्ध किये बहुरि, सासता स्थानक जो मोक्ष सो पाया है, ऐसे है ॥ २ ॥

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया
बारसंगाइसुयजलहि अवगाहया ।
मोक्खलच्छी महंती महंते सया
सूरिणो दिंतु मोक्खंगया संगया ॥ ३ ॥

याका अर्थ—ऐसे आचार्य परमेष्टी मोकूं वड़ी मोक्षलक्ष्मी द्यो, कैसे है ते–पच प्रकार आचार सोही भई पचाग्नि ताकूं भले प्रकार साधनेवाले है, भावार्थ–दर्शन ज्ञान चरित्र तप वीर्य ए पच आचार हैं, तिनिकूं पचाग्निकी उपमा दई सो लोकमैं पचाग्नितपतेकूं तपसी कहैं है ताकी अपेक्षा अलकाररूप है, वहुरि कैसे हैं–बारह अगरूप श्रुत सोही भया समुद्रजल ताके अवगाहनेंवाले हैं, भावार्थ–शास्त्रका ज्ञान जिनिकूं गुरु आम्नाय पूर्वक पूरण होय तेही आचार्य होय है विना गुरु आम्नाय शिक्षा देतैं विपर्यय होय है तातैं शास्त्रज्ञान युक्त है यह विशेषण किया है, वहुरि मोक्षकी जो अगता कहिये एकदेश कर्मनिर्जरा ताकूं सदा प्राप्त भये है, ऐसे है ॥ ३ ॥

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे
तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे ।

णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥ ४ ॥

याका अर्थ—हम सामायिकके कर्त्ता हैं ते ऐसे उपाध्याय परमेष्ठीकूं सदा वंदैं है, कैसे हैं—बड़ा संसाररूप भ्यानक भ्रमण करावनेवाला जो उद्यान ताविषै भूल्या है मार्ग ज्या ऐसे जीवनिकूं मार्गका बतावन हारे हैं, कैसा हैं संसारवन—तीक्ष्ण विकराल नख जाके पाइये ऐसा पापरूप पंचानन कहिये सिंह जामैं विद्यमान है, भावार्थ—जामैं पापरूप सिंह वसै है. ऐसे संसाररूप वन विषै मिथ्यामार्गमैं भ्रमते जे जीव तिनिकूं मोक्षमार्गका उपदेशकरि राह लगावै हैं ॥ ४ ॥

उग्गतवचरणकरणेहिं खीणंगया
धम्मवरझाणसुक्केकझाणं गया ।
णिब्भरं तवसिरियसमालिंगया
साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया ॥ ५ ॥

याका अर्थ—ऐसे साधु परमेष्ठी हैं ते मेरै ताईं मोक्षमार्गके दिखावनहारे होहु, कैसे हैं-उग्र तपश्चरणके करनेकरि क्षीण भया है, अंग जिनिका, बहुरि धर्म श्रेष्ठ ध्यान तथा एक शुक्लध्यानकूं प्राप्त भये हैं. बहुरि तपरूप लक्ष्मीकरि आलिंगित हैं युक्त है ॥ ५ ॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए
गुरुयसंसारघणवल्लि सो छिंदए ।
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं बहुमाणणं
कुणइ कम्मेंधणं पुंजपज्जालणं ॥ ६ ॥

याका अर्थ—इस स्तोत्रकरि जो पुरुष, पंच परमेष्ठी गुरुकूं वंदै सो पुरुष जो बडी संसाररूप सघनवेलि ताकूं छेदै है, बहुरि सो सिद्धि

कहिये मोक्ष ताके सुखानिकू पावै है, वहुरि वहुमान जैसें होय तैसे, भावार्थ—पहलें इन्द्रादिकपद पाय मोक्षपद पावै है, वहुरि मोक्षके प्रतिपक्षी जो कर्मरूप इंधन ताके पुजकू दग्ध करै है॥ ६॥

घत्ता।

अरुहा सिद्धायरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एदे पंच णमोकारा भवेभवे मम सुहं दिंतु॥

याका अर्थ—अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ए पच परमेष्ठी हैं तिनिके नमस्कार हैं ते भवभवविपें मोकू सुख द्यो। ऐसें सामायिकके कर्त्ताकी प्रार्थना है—

इच्छामि भंते पंचगुरुमहाभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि। दुक्खक्खओ कम्मक्खओ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं॥

याका अर्थ—भंते कहिये हे भगवन्! पचगुरु भक्तिकू इच्छू हू इसके अर्थि कायोत्सर्ग किया है तिसकी आलोचन करू हू। आठ महा प्रतिहार्यनिकरि जे अरहत, वहुरि आठ गुणकरि सयुक्त अर ऊर्ध्वलोकके मस्तकपरि तिष्ठै ऐसे सिद्धपरमेष्ठी, वहुरि तीन गुप्ति पाच समिति ये आठ प्रवचनमाता तिनिकरि सयुक्त आचार्य परमेष्ठी, वहुरि आचारांग आदि श्रुतज्ञानका उपदेश करनहारे ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी, वहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र ए तीन रत्न तेही भये गुण तिनिके पालन-

विषैं रक्त ऐसे साधु परमेष्ठी, तिनिकूं सदाकाल मैं सामायिकका कर्त्ता अर्चूं हूं, वंदूं हूं, नमस्कार करूं हूं। मेरा दुःखका क्षय होहु, कर्मका क्षय होहु, बोधिका लाभ होहु सुगतिविषै गमन होहु, समाधिमरण होहु, जिनके गुणनिकी प्राप्ति होहु। ऐसैं सामायिकका कर्त्ता भक्तिपाठ पढि प्रार्थना करै है॥

ऐसैं एकवीसवा स्थल है॥ २१॥

आगै शान्तिभक्ति पढै है;—

अथ पौर्वाह्णिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीशांतिनाथभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। णमो अरहंताणमित्यादि ततः थोस्सामीत्यादि पूर्वोक्तं पठनीयम्।

याका अर्थ—अथ कहिये अब प्रभातसंबंधी देववंदनाविषैं, भावार्थ प्रभातसंबंधी सामायिक करै तिसकाल पूर्वाचार्यनिके अनुक्रम कहिये परिपाटीकरि समस्त कर्मनिके क्षयके अर्थि भावपूजा वंदना स्तवन सहित श्रीशांतिनाथभक्ति कायोत्सर्ग मैं करूं हूं। ऐसैं पढि पीछै "णमो अरहंताण" इत्यादि पाठ पूर्वै कह्या है सो पढै॥

आगैं शान्तिपाठ पढै है—

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं
शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं
नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रम्॥ १॥

याका अर्थ—मैं सामायिकका कर्त्ता शान्तिनाथ तीर्थंकरकूं नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं—चन्द्रमासारिखा निर्मल है मुख जाका बहुरि

शील कहिये उत्तर गुण अर गुण कहिये मूलगुण तेही भये व्रत तिनिका पात्र है, बहुरि एकसौ आठ शरीरके लक्षण तिनिकरि सहित है गात्र कहिये शरीर जाका, बहुरि जिन जे गणधरादिक तिनिविषैं उत्तम है, बहुरि कमलसारिखे हैं नेत्र जाके ऐसा है ॥ १ ॥

पंचममीप्सितचक्रधराणां
पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च ।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः
षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥

याका अर्थ—मै सोलमा तीर्थंकर श्रीशान्तिनाथकूं नमस्कार प्रणाम करूहूं, कैसा है—कहे जे बारह चक्रवर्त्ती तिनिमैं पांचमा चक्रवर्ती है, बहुरि इन्द्र नरेन्द्र तिनिके समूहकरि पूजनीक है, बहुरि शान्तिका करनहारा है, बहुरि मै कैसा हूं—च्यारि प्रकार संघकै शान्तिका इच्छुक हूं। भावार्थ—सोलहमा तीर्थंकर श्रीशांतिनाथजिन है, सो इहां तिसकूं नमस्कार करनेका प्रयोजन यह है—सामायिककर्त्ता अपनें तथा संघकै शांति कुशल चाहै है सो 'शांति' ऐसा नाम धारक शांतिजिन है तिसकूं यादि करि शान्तिकै अर्थि नमस्कार किया है। परमार्थतैं सर्वही तीर्थंकर समान हैं शान्तिके कर्त्ता है शान्तिनाम सर्वहीका है, ऐसैं जानना ॥ २ ॥

पुनः—

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टि-
र्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ ।
आतपवारणचामरयुग्मे
यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥ ३ ॥

याका अर्थ—जिस शान्तिजिनके आठ प्रातिहार्य सोभै हैं, ते कौन—दिव्यतरु कहिये सुन्दर अशोकवृक्ष, देवनिकारि करी पुष्पवृष्टि, दुंदुभि वादित्र, सिंहासन, दिव्यध्वनि, छत्र, चामरका युग्म, भामण्डल, ऐसैं प्रातिहार्य है ॥ ३ ॥

तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं
शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं
मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

याका अर्थ—तिस जगतकरि पूजित शान्तिजिनेन्द्रकूं मैं मस्तककारि प्रणाम करूहूं, कैसा है—शान्तिका करनहारा है बहुरि सो शान्तिनाथ जिनेन्द्र सर्वसंघकूं शांति द्यो बहुरि मेरै ताई उत्कृष्ट शांति द्यो, कैसा हूं मैं—तिस पाठकूं पढताहूं, भावार्थ-मैं शांतिपाठ पढूंहूं सो मोकूं उत्कृष्ट शांति वीतरागता द्यो ॥ ४ ॥

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपा—
स्तीर्थकराः सततशान्तिकरा भवन्तु ॥ ५ ॥

याका अर्थ—ते सर्वही तीर्थंकर मेरै निरन्तर शांतिके करनहारे होहु, कैसे है ते—इंद्रकूं आदि देकारि देवनिके समूहनिकारि जिनिके चरण कमल स्तवन कीये गये हैं, कैसे है इंद्र आदिक—मुकुट कुंडल हार रत्न जिनिकै पाइये है, बहुरि ते तीर्थंकर कैसे हैं—बडे उत्तम जिनिके वंश हैं तिनिके तथा जगतके प्रकाश करनहारे दीपकसमान हैं, ऐसे हैं ॥ ५ ॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां
यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः
करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥ ६ ॥

याका अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् है सो भलेप्रकार पूजाके करनहारे-निकै, बहुरि यतीश्वरनिकै, बहुरि सामान्य तपोधन साधुनिकै, बहुरि देशकै, बहुरि राष्ट्र कहिये राजाकी हद्दकै, बहुरि नगरकै बहुरि राजाकै शांति करौ। भावार्थ—सामायिकका कर्त्ता सर्वहीकै शांति चाहै है ॥ ६ ॥

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि-
र्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च ।
भामंडलं दुंदुभिरातपत्रं
सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ ७ ॥

याका अर्थ—जिनेश्वरनिकै ए भले प्रातिहार्य हैं—अशोक वृक्ष है, देवनिकृत पुष्पवृष्टि है, दिव्यध्वनि है, चामर है, सिंहासन है, भामंडल है, दुंदुभिवादित्र है, छत्र है, ऐसैं आठ प्रातिहार्य है ॥ ७ ॥

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः
काले काले च सम्यग् विरचतु मघवा व्याधयो यांतु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारीक्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ८ ॥

याका अर्थ—सर्व प्रजाकै क्षेम कुशल होहु राजा भूमिका पालक धर्मात्मा अरु बलवान् प्रभावसहित होहु, वर्षाकालविषै मेघ भलेप्रकार वरसौ, प्रजाकी व्याधि रोग नाशकूं प्राप्त होहु, प्रजाविषै दुर्भिक्ष तथा

चौर मारी तथा मरीका भय क्षणमात्रभी मति होहु. इस जीवलोकविषै जिनेश्वरका दयारूप धर्मचक्र है सो निरंतर प्रभावसहित वर्त्तो, कैसा है धर्म—सर्वप्राणीनिकूं सुखका देनें वाला है ॥ ८ ॥

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥

याका अर्थ—ऋषभआदि जिनेश्वर तीर्थंकर परम देव हैं ते जगतकै शान्ति करो, कैसे हैं नाश कीये हैं—घातिकर्म ज्या. बहुरि केवलज्ञानरूप सूर्य हैं, ऐसे हैं ॥ ९ ॥

अब चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्तिका पाठ है.

इच्छामि भंते चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं चउतीस अतिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहियाणं बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णामंस्सामि. दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

याका अर्थ—हे भगवान्! चौवीस तीर्थंकरनिकी भक्तिकूं इच्छूं हूं. इसकै अर्थि कायोत्सर्ग किया तिसकी आलोचना करूं हूं । ते तीर्थंकर ऋषभ आदि महावीर अंत मंगलरूप महापुरुष पंच कल्याणनिकरि युक्त आठ महाप्रातिहार्यनिकरि सहित चौतीस अतिशय विशेष संयुक्त. कल्पवासी बारह भवनवासी, दस व्यंतर आठ ज्योतिषी दोय ऐसैं बत्तीस इन्द्रनिके मणिनई मुकुटनिसहित मस्तकनिकरि पूजित,

बहुरि बलभद्र नारायण चक्रवर्ती तथा ऋषि यति मुनि अनगार इनिकी सभाकरि वेढित स्तुतिके सैकडा हजारनिके ठिकाणे ऐसे तीर्थंकरनिकू मैं सदाकाल अर्चू हूं पूजूं हूं वदूं हूं नमस्कार करूं हूं। मेरे दुःखका क्षय होहु, कर्मका क्षय होहु, बोधिका लाभ होहु, सुगतिविषै गमन होहु, समाधिमरण होहु, तिनिके गुणनिकी प्राप्ति होहु॥

ऐसैं बाईसवा स्थल है॥ २२॥

आगैं समाधिभक्ति पढै है,—

अथ पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं पूजावंदनास्तवसमेतं श्रीचैत्यपंचगुरुशान्तिभक्तीर्विधाय तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं श्रीसमाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। णमो अरहंताणमित्यादि जाप्यं॥ ९॥

याका अर्थ—अब प्रभातसबंधी देववंदनाविषैं पूर्वाचार्यनिके अनुक्रमकरि समस्तकर्मके नाशके अर्थि भाव पूजा वंदनास्तवसहित श्रीचैत्यभक्ति पंचगुरुभक्ति शांतिभक्ति करि अर अब तिस हीनाधिक दोषकी विशुद्धताके अर्थि आत्माके पवित्र करनेके अर्थी श्रीसमाधिभक्तिका कायोत्सर्ग मैं करूं हूं। ऐसैं प्रतिज्ञाकरि णमोकारमंत्रके नव जाप्य करै।

श्लोक—व्युत्सृज्य दोषान्निःशेषान् स ध्यानी स्यात्तनुस्तुतौ।
सहेतोपसर्गादीन् कर्मैवं भिद्यतेतराम्॥ १॥

याका अर्थ—सो सामायिकका कर्त्ता समस्त दोषनिकू छोडि अर ध्यानी होय कायोत्सर्गविषैं उपसर्गभी आवै तौ टलै नाहीं। ऐसैं अतिशयकरि कर्मकी निर्जरा करै है॥ १॥

श्लोक—ध्यानाशुशुक्षिणाविद्धे मनऋत्विक्समाहिताः ।
स्वकर्ममिथो भावसर्पिषा जुहुमोऽधुना ॥ २ ॥

याका अर्थ—सामायिककर्त्ता ऐसैं भावै—जो हम अब ध्यान रूप श्रेष्ठ अग्निविषैं अपने कर्मरूप समिध कहिये ईंधनकू भावरूप घृतकरि होमै है, कैसे है हम—मनरूप ऋत्विक् कहिये होम करनेवाला ताकरि सहित है । लौकिकमै कहै है—जो यज्ञ होम करै ताका पाप कटै है सो सामायिककर्त्ता कहै है—जो हम समाधिरूप यज्ञ होम करै है, पापका काटनेवाला यह है ॥ २ ॥

श्लोक—अहमेवाहमित्यात्मज्ञानादन्यत्र चेतना ।
इदमस्मि करोमीदमिदं भज इति क्षये ॥ ३ ॥

याका अर्थ—मै सामायिकका कर्त्ता समाधिरूप भया सता "मै हू सोही मै हू" ऐसैं आत्मज्ञानतै अन्यवस्तुविषैं मेरी चेतना अनुभवनकू नाही लगाऊहू, अन्यविषैं[1] यह मै करूहू यह मै भोगऊहू ऐसे भाव न करूहू । भावार्थ.—पर विषैं ममत्त्व कर्त्ता भोक्तापणाकी बुद्धि छोडि अर ज्ञानचेतनाकू अनुभवूहू, ऐसैं समाधि लगावै ॥ ३ ॥

श्लोक—अहमेवाहमित्यन्तर्जल्पसंपृक्तकल्पनाम् ।
त्यक्त्वाऽवाग्गोचरज्योतिः स्वयं पश्यामि शाश्वतम् ॥४॥

याका अर्थ—मै सामाधिकका कर्त्ता "अहमेवाह" कहिये मै हू सो ही मै हू । ऐसैं अन्तर्जल्पकारि मिली कल्पनाकू छोडि अर वचन कै अगोचर ज्योति है ताहि आपै आप देखू हू कैसा है ज्योति—सासता है जाका कबहू विनाश नाहीं । भावार्थ—"मै हू" ऐसी भी अक्षररूप अन्तर्जल्पकी कल्पनाकू छोडि वचन अगोचर आपाकू आप देखै है, यह समाधि है ॥ ४ ॥

---

१ 'यह मैं हूं, ऐसा 'इदमस्मि'का अर्थ और होना चाहिये ।'

श्लोक—अमुह्यन्तमरज्यंतमद्विषंतं च यःस्वयम् ।
शुद्धे निधत्ते स्वं शुद्धमुपयोगं स सिध्यति ॥ ५ ॥

याका अर्थ—जो पुरुष अपने उपयोग कूं मोह राग द्वेषरूप न होते कूं अपने शुद्ध आत्मविषैं आपही करि धारै है लगावै है सो सिद्धिकूं प्राप्त होय है ॥ ५ ॥

आर्या—बोधिसमाधिविशुद्धिस्वचिदुपलब्ध्युच्छलत्प्रमोदभराः ।
ब्रह्म विदंति परं ये ते सद्गुरवो मम प्रसीदन्तु ॥ ६ ॥

याका अर्थ—ये मुनि बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता सो ही भई समाधि तिस स्वरूप जो विशुद्धिरूप अपना चैतन्यकी उपलब्धि ताकरि उछलता जो प्रमोद कहिये हर्ष ताका है भर कहिये समूह जिनिकै ऐसे हैं ते परम ब्रह्म जो शुद्ध आत्मा ताकूं अनुभवैं हैं ऐसे सद्गुरु मेरे ऊपरि प्रसन्न होहु ॥

अब समाधिभक्ति पढै है—

इच्छामि भंते समाहिभत्तिकालस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तमरूवपरमप्प झाण लक्खणसमाहि सव्वकालं अंचेमि इत्यादि ॥

याका अर्थ—हे भगवन्! मैं समाधि भक्तिकू इच्छूं हूं तिसकै अर्थि कायोत्सर्ग कीया ताकी आलोचना करूं हूं, रत्नत्रयरूप परमात्माका ध्यान सो है लक्षण जाका ऐसा समाधिकूं सर्वकाल अर्चूं हूं पूजूं हूं वदूं हूं नमस्कार करूं हूं मेरे दुःखका क्षय होहु कर्मका क्षय होहु बोधिका लाभ होहु समाधिमरण होहु जिनके गुणानिकी संपत्ति होहु ॥

ऐसै तेईसवा स्थल है ॥ २३ ॥

अथेष्ट प्रार्थना।

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।
शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चाऽऽत्मतत्त्वे ।
संपद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ १ ॥

याका अर्थ—अब इष्टकी प्रार्थना करें हैं;—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इनकू नमस्कार है ।

ऐसे शास्त्रनिका तौ मेरें अभ्यास होहु, वहुरि जिनपतिकूं नुति कहिये नमस्कार होहु, वहुरि सदा आर्यपुरुषनि सहित संगति होहु, वहुरि समीचीन आचरणके धारक पुरुषनिके गुणनिके समूहकी कथा होहु, वहुरि दोषके वाद विषै मौन होहु, वहुरि सर्व प्राणीनिकू प्यारा अर हितरूप वचन प्रवर्त्तो वहुरि आत्मतत्वविषै भावना होहु; मेरैं जेतैं मोक्ष न होय तेतै भवभवविषै एते प्रवर्त्तो । ऐसैं इष्ट प्रार्थना करी ।

पुनः—

आर्या—तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावत् यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥

याका अर्थ—हे जिनेन्द्र ! जेतै मेरें निर्वाणकी प्राप्ति न होय तेतै तुमारे चरणयुगल मेरे हृदयविषै तिष्टै, वहुरि मेरा हृदय तुमारे चरणयुगलविषै लीन तिष्टौ ॥

गाथा—अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमहु णाणदेवय मज्झ य दुक्खक्खयं दिंतु ॥

याका अर्थ—हे ज्ञानदेव जिनेन्द्र ! जो मैं या भक्तिविषै अक्षर पद अर्थकरि हीण कह्या होय, मात्राकरि हीण होय तौ तुम क्षमा किजियो बहुरि मेरा दुःख क्षय कीजियो, यह प्रार्थना है ॥

नमोऽस्तु, श्रीआचार्यदेववंदनायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् जाप्यं ९ ॥

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥ १ ॥

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ २ ॥

याका अर्थ—सामायिकका कर्त्ता कहै है—जो मेरा नमस्कार होहु श्रीआचार्यवदनाविषैं सिद्धभक्तिकायोत्सर्ग करू हू। ऐसै पढि णमोकारमन्त्रका नव जाप्य करै है।

पीछैं सिद्धस्तवनका पाठ—

सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्म तैसैही अवगाहना, अगुरुलघु अव्याबाध ए सिद्धनिके आठ गुण हैं ॥ १ ॥

मैं सिद्धनिकू मस्तककरि नमस्कार करूं हू, कैसे हैं—तपकरि सिद्ध हैं, नयकरि सिद्ध हैं, सयमकरि सिद्ध हैं, चारित्रकरि सिद्ध है, बहुरि ज्ञानविषै सिद्ध है, दर्शनविषैं सिद्ध है। भावार्थ—जाकै सिद्धि भई होय ताकू सिद्ध कहिये सो लौकिकमे अनेक कार्यकरि सिद्ध कहावैं है, सो मैं तौ इस गाथामै कहे तप नय सयम चारित्र ज्ञान दर्शन इनिकी सिद्धि करै तिसकू नमस्कार करू हू ॥

पुनः—

नमोऽस्तु, आचार्यदेववंदनायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहमर्हंजाप्यं ९ ॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो
लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्य-
मेतच्छ्रुतं पंच पदं नमामि ॥ १ ॥

गाथा—अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गुंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥ २ ॥

इनिका अर्थ—सामायिकका कर्त्ता कहै है मेरा नमस्कार होहु । आचार्य वंदना विषैं मैं श्रुतका कायोत्सर्ग करूं हूं, ऐसैं कहिकरि णमोकारमंत्रका नव जाप्य करै पीछैं स्तवन पढै ।

मैं श्रुत जो द्वादशांगरूप सर्वज्ञकी वाणी ताकूं नमस्कार करूं हूं, यह वाणी अक्षररूप केते पद सहित है ? सो कहै है—एक सौ बारह कोडि तियासी लाख अठावनहजार पांच एते पद हैं, भावार्थ—पद तीन प्रकार है, एक तौ विभक्ति पदे है ताका विधान व्याकरण तैं जानना बहुरि एक प्रमाण पद है सो श्लोकरूप छंद बत्तीस अक्षरका होय है, बहुरि एक मध्यमपद है ताके बत्तीस अक्षररूप श्लोक—इक्यानव कोडि आठ लाख चारासी हजार छहसैं साडा इकईस ऐसैं मध्यपद ऊपरि कहे तेते श्रुतज्ञान द्वादशांगके जाननें ॥ १ ॥

बहुरि कहै है—अरहंतकरि भाषित जामैं अर्थ है, बहुरि गणधर देवनिकरि भलैप्रकार गूंथ्या है ऐसा श्रुतज्ञानरूप समुद्रकू मैं भक्तिकरि युक्त हूवा संता मस्तककरि प्रणाम करूं हूं ॥

आगै आचार्यभक्ति करै है,—

नमोऽस्तु, आचार्यवन्दनायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। जाप्यं ९॥

अर्थ—सामायिककर्त्ता कहै है–मेरा नमस्कार होहु, मैं आचार्यकी वंदनाविषै आचार्यभक्तिका कायोत्सर्ग करूं हूं। ऐसैं कहि णमोकारमंत्रका नव जाप्य करै हैं।

पीछै स्तवन पढै;—

आर्या—श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः॥

याका अर्थ—सामायिकका कर्त्ता कहै है–जो मेरा गुरुनिकै अर्थि नमस्कार होहु, इहां गुरुशब्दकरि दीक्षा शिक्षादायक आचार्य जाननें कैसे है गुरु—स्वमत अर परमतके जाननेंविषै प्रवीण है बुद्धि जिनकी, बहुरि शास्त्ररूपी समुद्रके पारगामी है, बहुरि सम्यक्‌चरित्र अर तपके निधान है, बहुरि आचार्यके गुणनिकरि युक्त हैं॥

गाथा—छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे॥

याका अर्थ—ऐसे धर्माचार्यनिकूं मैं वंदूहूं, कैसे है—छत्तीस गुण आचर्यके है तिनिकरि पूरण है, बहुरि पचप्रकार आचारके करणेविषै जिनिकै सम्यग्दृष्टि हैं, भावार्थ—पच आचारके करने करावनेंविषै जिनिका प्रवर्तना है, बहुरि शिष्यनिके उपकार करणेविषै प्रवीण है, ऐसे है। इहां षडावश्यक दशलक्षण धर्म बारह तप तीन गुप्ति पच प्रकार आचार, ए छत्तीस गुण जाननें॥

गाथा—गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मं मरणं न पावंति॥

याका अर्थ—यह प्राणी गुरुभक्तिसहित संयमकरि घोर संसार सागरकूं तिरै है, अष्टकर्मकूं छेदै है, फेरि जन्म मरणकूं न पावै है। भावार्थ—गुरुभक्ति विना संयम मोक्षका कारण नाहीं है॥

ये नित्यं व्रतहोममंत्रनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः॥

याका अर्थ—ऐसे साधु आचार्य हैं ते मोकूं तुष्टि करो, कैसे है जे—व्रत कहिए पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति तेही भये मंत्र होम तिनिविषैं तौ निरन्तर लीन है, बहुरि ध्यानरूप अग्निहोत्र विषै तत्पर है, बहुरि षडावश्यककर्मविषैं नित्य सन्मुख है बहुरि बारह प्रकार तप सोही है धन जिनिकै ऐसे तपोधनमुनि तेही हैं धन जिनिकै, भावार्थ—जिनि आचार्यनिकै मुनि है तेही परिवार है, धन है बहुरि पंच आचार क्रियाविषै प्रवीण है बहुरि शील है उज्ज्वल वस्त्र जिनिकै, बहुरि सम्यग्दर्शनादि गुण है शस्त्र जिनिकै, बहुरि चन्द्रमा सूर्यका तेज प्रकाशतैं अधिक है प्रकाश जिनिकै, बहुरि मोक्षके द्वारका कपाटके उघाडनें विषै वडे सुभट हैं, ऐसे हैं। भावार्थ—लौकिकमैं प्रवीण होय ब्राह्मण आदिकूं आचार्य मानै है सो ब्राह्मण मंत्र होमविषै अग्निहोत्री होय षट्कर्म यज्ञकूं जानता होय ताकी क्रिया मैं निपुण होय तपस्वी होय उज्ज्वल वस्त्र धरै जीवनिके घातकूं शस्त्र भी धारै प्रतापी होय ऐसा होय सो स्वर्गका द्वार उघाडै सो इहां तिसका निषेध कै अर्थि अलंकाररूप वर्णन है। जो ऐसे आचार्यके गुण हैं तिनिकूं धारै सो आचार्य है, लौकिक मानै सो नाही है, ऐसा आशय जानना॥

श्लोक—गुरवः पांतु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः।
चरित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः॥

याका अर्थ—ऐसे गुरु हैं ते हमकूं सदा पालि रक्षा करो कैसे हैं—ज्ञान दर्शनके नायक हैं आप तिनिकरि युक्त हैं परकूं प्राप्त करै है, बहुरि चारित्रकरि समुद्रकी ज्यो अथाह है, बहुरि मोक्षमार्गके उपदेश करन-हारे है॥

ऐसें चौईसमा स्थल है॥२४॥

ऐसै पूर्वाचार्यनिकरि कीया सामायिकका पाठ है सो मुनि त्रिकाल सामायिक करै है त्रिकाल पढै है। अर श्रावकभी सामायिक करै है सो श्रावकका पाठ अन्य है अर यह पाठभी पढै तौ दोष नाहीं, स्तुतिपाठ जो पढै सो ही श्रेष्ठ है। ऐसै जानना॥

दोहा।

मैं वंदूं अरहंतकूं सिद्ध सूरि उवझाय।
साधु सकल मंगल करन सामायिक सुखदाय॥ १॥
ऐसे सामायिक पढ्यो सार जानि मुनिवृंद।
धर्मराग मति अल्प फुनि भाषामय जयचंद॥ २॥

इति श्रीसामायिकपाठकी वचनिका समाप्त।

शुभम्।